अध्याय - ४

मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यास साहित्य में सामाजिक - सद्भावना

छायाचित्र:-१

मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों मे सामाजिक सद्भावनाओं को निरूपित करने से पूर्व इनके उपन्यासों के परिचय को जानना आवश्यक है । इनके उपन्यासों की कथा अपने आपमे एक सफल कहानी सिद्ध हुई है। इनके उपन्यासों मे सद्भावनाओं के सभी तत्व विद्यमान हैं। प्रत्येक कहानी अपने आपमे एक न एक सद्भाव को संजोए हुए है चाहे वो पारिवारिक सद्भाव हो या सामाजिक सद्भाव हो। इन्होंने अपनी रचना मे धार्मिक और सांस्कृतिक सद्भावनाओं को भी अपनी औपन्यासिक रचनाओं मे स्थान दिया है जिससे इनके उपन्यास मनोरम और रोचक लगने लगते हैं।

भाषा के आधार पर तो इन्होंने अपनी रचनाओं मे पाश्चात्य भाषा का भरपूर प्रयोग किया है तथा अपने उपन्यासों मे कई स्थान पर इन्होंने मुहावरेदार भाषा का बड़ा ही सुंदरतम् प्रयोग करने के साथ-साथ विचारत्माक भावों का भी प्रयोग किया है। इन सभी सद्भावनाओं के साथ-साथ एहतेशाम जी ने अपनी रचनाओं मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को भी बहुत ही सुन्दर रूप प्रदान किया है। जिनको पढ़ते ही पाठक के अन्दर राष्ट्र-प्रेम की भावना जागृत हो जाती है । इनकी सम्पूर्ण रचनाओं का परिचय इस प्रकार है :-

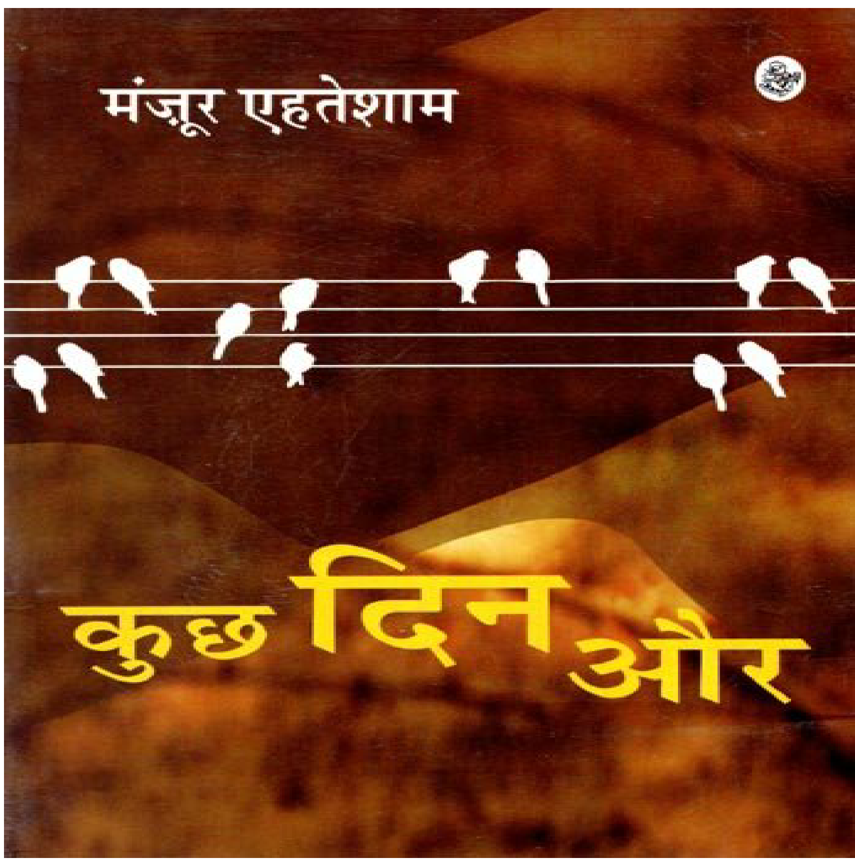

छायाचित्र:-२

कुछ दिन और (सन्. - १९७६) :- मंज़ूर एहतेशाम जी ने कई उपन्यासों की रचना की जिनमे से इनका सर्वप्रथम रचित उपन्यास 'कुछ दिन और' है जिसका प्रकाशन सन् १९७६ ई. मे हुआ। इनके इस उपन्यास की कहानी दिन और निराशा की नही, आशा के भंवर मे डूबते चले जाने की एक

सफल प्रयास की कहानी है इस उपन्यास मे देखा जाए तो एक पाठक को - एक अंधी आशा, जिसके पास न कोई तर्क है, न कोई तंत्र; बस वह है अपने-आप मे स्वायत्त । इस कहानी का नायक अपनी निष्क्रियता मे जकड़ा हुआ प्रतीत होता है तथा ये इसी की उँगली थामे चलता रहता है एवं धीरे-धीरे जिंदगी के ऊपर से उसकी पकड़ ढीली पड़ती चली जाती है तथा इस पूरी परिस्थिति का सामना उसकी पत्नी पूर्ण रूप से करती है। इस रचना की नायिका अपने मन पर और कभी कभार अपने शरीर पर वह एक स्थगित जीवन जीने वाले व्यक्ति की पत्नी जान पड़ती है। इस तथ्य को धीरे -धीरे एक ठोस आकार देती हुई उसे एक दिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस लगातार विलंबित आशा से कहीं ज्यादा श्रेयस्कर तो एक ठोस निराशा ही है क्योंकि उस जगह से कम से कम नए आयामों के बारे मे सोच कर कोई न कोई नई शुरुआत तो की जा सकती है तथा वह यही निश्चय करती है। यह कहानी अत्यंत सामान्य परिवेश मे तलाश की गई एक विशिष्ट कहानी मानी गई है जिसको पाठक को पढ़ते हुए सामाजिक - सद्भावना के प्रारूपों का अनुभव होता है और ऐसा लगता है जैसे हमारे आस - पास के घरों मे ही तो कहीं ऐसी कहानी तो जन्म नही ले रही।

<u>**छायाचित्र:-३**</u>

सूखा बरगद (सन् - १९८६ ई.) :- सूखा बरगद मे मंजूर एहतेशाम जी ने मुख्यत: दो विषयों को अधिक महत्व दिया है एक तरफ तो इनका पूरा ध्यान स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यम वर्ग के मुस्लिम समाज की मानसिकता पर लगा हुआ है तथा दूसरी तरफ समाज मे रह रहे अल्पसंख्यक वर्गीय समाज की सुरक्षा की जांच पड़ताल मे।

एहतेशाम जी ने मध्यम वर्गीय मुस्लिम समाज का वर्णन इस उपन्यास मे तीन परिस्थितियों को ध्यान मे रख कर किया है पहली है अतीत का मोह, दूसरी व्यर्थ का दिखावा, और तीसरी कथनी एवं करनी मे भेद आदि इन सभी को एक तरह से अल्पसंख्यक समाज मे रूढ़िवादी विचारधारा के रूप मे देखा जा सकता है।

'सूखा बरगद' मंजूर एहतेशाम जी की एक ऐसी रचना है जिसने उपन्यास के रचनाकाल मे अपनी एक अलग ही छवि स्थापित करते हुए पाठकों के भीतर एक हलचल पैदा कर दी है क्योंकि यह उपन्यास, महज़ केवल उपन्यास ही नही है बल्कि यह भारतीय मुस्लिम समाज की एक मुकम्मल खींची हुई छवि है ।

एहतेशाम जी की यह रचना वर्तमान मुस्लिम समाज के बीच हो रहे द्वंदों की एक गम्भीर जांच पड़ताल करती हुई प्रतीत हुई है तथा इसी जांच - पड़ताल की वजह से ही यह उपन्यास काल-सीमा को लाँघता प्रतीत होता नज़र आता है। जिसकी वजह से मंजूर एहतेशाम जी का नाम हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध रचनाकार राही मासूम रज़ा और शानी सरीखे आदि के साथ लिया जाने लगा और बहुत जल्द ही ये बहुत चर्चित एवं प्रसिद्ध रचनाकारों मे गिने जाने लगे।

मंज़ूर एहतेशाम जी ने सामाजिक सद्भावों को ध्यान मे रखते हुए 'सूखा बरगद' उपन्यास की रचना की है जिसमें इन्होंने मुस्लिम समाज मे व्याप्त अशिक्षा, अन्धविश्वास, धर्म आडंबर, सामाजिक रूढ़िवादिता और विडम्बनाओं का बड़ा ही अद्भुत चित्रण समाहित करने का एक सफल प्रयास किया है और धार्मिक भावनाओं को जीवंतता प्रदान की है।

इस उपन्यास मे उपन्यासकार ने मुस्लिम-समाज के विकास से जुड़े जिन संवेदनशील गतिरोधों को समाहित करने का प्रयास किया है। उनकी चर्चा करते हुए भी समाज मे रह रहे लोग आमतौर पर संकोच करते तथा घबराते हैं और जो धर्म, जातीयता, क्षेत्रीयता, भाषा और साम्प्रदायिकता के संदर्भ मे जो सवाल आज़ादी के पश्चात् इस मुल्क मे जन्मे हैं उनकी छवि इस सम्पूर्ण साहित्य मे पाठक महसूस कर सकता है। इस उपन्यास मे ये सभी सवाल इस तरह से फैले हुए हैं जिस तरह से 'सूखा बरगद' की जड़ें हो। लेखक ने इस पेड़ को ऐसा बतलाया है जिसके नीचे न तो कोई कौम जन्म ले सकती है और न ही किसी प्रकार की खुशहाली की कल्पना की जा सकती है।

उपर्युक्त सभी सवालों के जवाब समाज के शोषित, पीड़ित, अपमानित और लांक्षित लोग निम्न वर्ग के लोगों के पास ही हैं, जो आज भी कई जगहों पर प्रताड़ित होते चले आ रहे हैं और ये सभी आज भी अपना वजूद बनाए वर्तमान मे स्थापित किए हुए हैं। यह साहित्य सामाजिक विकास के अत्यन्त संवेदनशील एवं सद्भावनाओं से केवल अछूता ही नही बल्कि अस्तित्व और उम्मीद के सन्दर्भ मे पूर्ण रूप से जांच पड़ताल करता हुआ नज़र आता है।

मंज़ूर एहतेशाम जी ने इस रचना मे आजादी के बाद से लेकर आठवें दशक तक की सामाजिक सद्भावना के तत्वों के साथ- साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, एवं सांस्कृतिक बदलावों की विचारधाराओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और इसके साथ - साथ इन्होंने निम्न मध्यम वर्गीय मुस्लिम परिवार की परिस्थितियों को दर्शाया है। इस साहित्य मे ये मुस्लिम समुदाय की बदलती हुई विचारधारा का परिवर्तन दर्शाने मे पूर्ण रूप से सफल रहे हैं।

इस रचना मे समाज की युवा पीढ़ी का शिक्षित होना और नवयुवतियों का नौकरियों पर जाना, उस विचारधारा पर जा कर केंद्रित होता है जो कि आज के आधुनिक युग की पीढ़ी के बीच उत्पन्न हो रहे अंतर्विरोधों को दर्शाता है और इसे एक ही समुदाय अर्थात् मुस्लिम समुदाय के आधार पर ही नही देखा जा सकता अपितु इस रचना की दृष्टि एक वैज्ञानिक दृष्टि है।

मंज़ूर एहतेशाम जी ने इसमे जिस पीढ़ी को आधार बनाया है उस पीढ़ी को अपने समाज की मिली जुली संस्कृति के लिए अपने स्वार्थों को पूर्ण रूप से त्यागना होगा और इस रचना से उभरती हुई इस विचारधारा को हम प्रगतिशील और प्रासंगिक मान सकते हैं और सुहेल का सामाजिक - राजनैतिक सद्भावों मे इसका रूढ़िवादी हो जाना ही प्रगतिशील विचारधारा की कमियों का प्रस्तुतीकरण करता है। जिससे इस उपन्यास के विचारों का पाठक अपनी वैचारिक शक्ति के अनुसार अनुमान लगा सकता है।

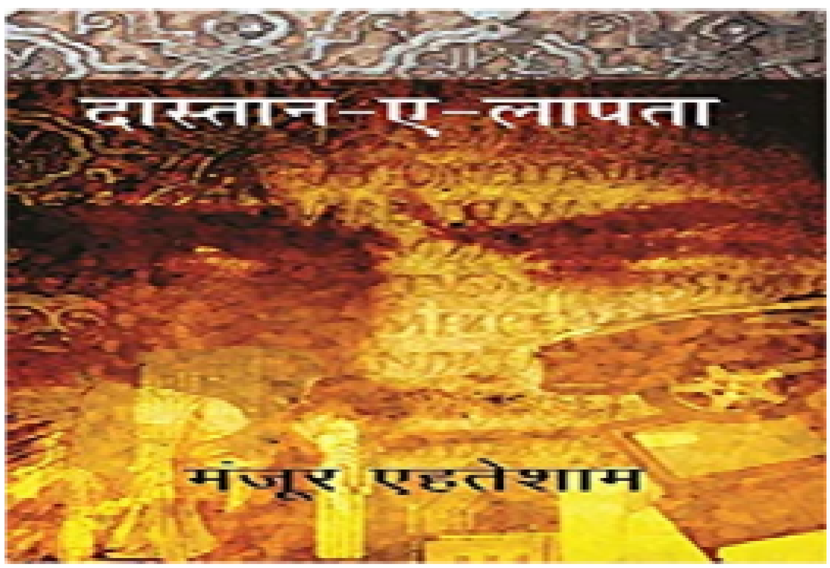

छायाचित्र:-४

दास्तान-ए-लापता (सन् - १९९५ ई.) :- दास्तान-ए-लापता, मंज़ूर एहतेशाम जी का तीसरा उपन्यास है। इस उपन्यास मे इन्होंने किसी भी व्यक्ति के निजी और आत्मीय संसार मे राजनीतिक सद्भावना तथा सामाजिक परिस्थितियां किस प्रकार एक हृदय विदारक घाव दे सकते हैं तथा पाठक के मन को विचलित कर देने वाला एक दस्तावेज है, जो कि समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है।

दरअसल संसार लोगों का ही नही, लापताओं का भी निवास स्थल माना गया है तथा जिस प्रकार अन्य प्रजातियां यहाँ जन्म लेती हैं उसी प्रकार इस संसार मे लापता भी जन्म लेते हैं और निरंतर विकसित होते रहते हैं तथा आ़खिर मे थक - हारकर अपने अन्त को प्राप्त हो जाते हैं। इसमे ज़मीर एहमद ख़ान की जिंदगी का वर्णन एक सामाजिक व्यक्ति के रूप मे दर्शाया गया है।

यह उपन्यास इस क्रूर दुनिया मे उसके बड़े होने का दस्तावेज़ का प्रतिरूप माना गया है तथा ये बेईमानियों ज़मीर एहमद ख़ान के साथ - साथ उन सब लोगों की कहानी है जो जाने-अनजाने किसी परिवार या व्यवस्था की परिधि से अछूते रह जाते हैं अथवा ये उन लोगों की कथा है जो चाहते हुए भी इस अन्धी दौड़ का हिस्सा बनने मे असमर्थ रहते हैं । जो कि हर बार अपने अंतर्मन के अन्तर्विरोधों के साथ केवल अपने भीतरी तहख़ानों मे ही प्रवेश कर पाते हैं।

यह कथा उन लोगों की कथा है जो ज़िन्दगी की हर असफलता मे अतीत की दुर्लभ परिस्थितियों का सामना निरंतर करते रहते हैं तथा जो अपनी छोटी-छोटी बेईमानियों को आत्मा मे पैबन्द की तरह लगाकर अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं और एक दिन सबके देखते-देखते अपने भीतर ही वे सब लापता हो जाते हैं। इसके कथानक मे पीड़ा की एक धुँधली सी आकृति बराबर चलती हुई प्रतीत होती रहती है तथा अपने देश-काल से असुविधाजनक सवाल पूछते-पूछते इस लकीर की संरचना मंज़ूर एहतेशाम जी के पिछले उपन्यास 'सूखा बरगद' से 'दास्तान-ए-लापता' तक यह लकीर खुद - ब - खुद खिचती चली आई है।

इस रचना मे पाठक को भ्रमित करने के लिए संसार से जुड़े हुए कई सामाजिक घटनाक्रमों को समाहित किया गया है इसमे परिवारों और व्यक्तियों का एक अलग ही प्रकार का सनकी पन नजर आता है एवं एक प्रकार से देखा जाए तो मंज़ूर एहतेशाम जी के पिछले उपन्यास 'सूखा बरगद' से इस उपन्यास का आगमन हुआ है।

जहाँ इससे पहले के उपन्यास 'सूखा बरगद' मे एहतेशाम जी का सरोकार एक अल्पसंख्यक समाज से था, वहीं इस बार इस रचना मे इन्होंने एक अल्प या बहुसंख्यक की परिभाषा को बेमानी बताया हुआ एक अकेला आदमी रखा है, जो कि अपनी परिधि से बाहर की ओर निकल चुका है तथा वह क्रमशः अदृश्य होता आदमी, जो लोप होने से पहले ही इस कथानक के परिदृश्य मे अपने पद् चिन्हों को छोड़ता हुआ प्रतीत होता है तथा वह अपनी सुप्त पीड़ा के साथ, शायद आ़खिरी बार मिलने का प्रयास करता है। इस सम्पूर्ण उपन्यास मे सामाजिक सद्भावना का समावेश बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

छायाचित्र:-५

बशारत मंज़िल (सन् - २००४ ई.) :- 'बशारत मंजिल' उपन्यास की कहानी एक मुस्लिम खानदान की कहानी है जो कि तीन से भी ज्यादा पीढ़ियों के जीवन के सफ़र को दर्शाती है। ये कहानी संजीदा अली सोज नाम के एक ऐसे इंसान की कहानी है जो एक शायर हुआ करता था तथा गांधीवादी विचारधारा का समर्थक था और साथ ही साथ एक तरक्कीपसंद मुसलमान भी जाना जाता था। जो कि एक सामाजिक व्यक्ति के आदर्शों पर चलता था एवं ये कहानी एक ऐसे बड़े भाई की कहानी है जिसके अंदर अपने छोटे भाई की मकबूलियत को सहन करने की क्षमता नही थी और उससे वह अपने पूरे जीवन मे केवल नफरत ही करता रहा।

'बशारत मंज़िल' कहानी एक मुल्ला किफायतुल्लाह जी की कहानी है जिनकी यह विचारधारा थी कि मजहब एक साथ सलामती एवं सद्भावना से रहने के बजाय दूसरों की छवि बिगाड़ने और अन्य घर को पूर्ण रूप से नष्ट करने के बहानों का नाम हो गया है और मुल्ला जी का यह कहना है कि जब किताबों को पढ़ने की जगह पूजन किया जाने लगे तो व्यक्तियों की विचारधारा मे गड़बड़ी होना लाज़मी है। सही मायने मे यह कहानी है ही नही यह ज़िंदगियों का एक ऐसा दस्तावेज़ है जो की इतिहास के पन्नों मे कहीं खो गई हैं।

यह पुस्तक एक ऐसी पुस्तक है जिसमें सत्य, कल्पना, सामाजिकता और ऐतिहासिक विचारधारा का हमें एक अनोखा मिश्रण प्राप्त होता है जिसकी सराहना किये बिना कोई भी पाठक नही रहा सकता । इस उपन्यास का कालखण्ड सन् 1900 ई. से लेकर सन् 1947 ई.

तक का माना गया है यह वो दौर था जब पूरे भारत के देशभक्तों के भीतर स्वतंत्रता की ज्वाला धधक रही थी और इस समय भारत एक बहुत बड़े बदलाव के दौर से गुजर रहा था तथा इस उपन्यास मे उस ऐतिहासिक कालखण्ड की परिस्थिति को दर्शाया गया है एवं उस परिस्थिति को एहतेशाम जी की कहानी के पात्रों की नजर से देखना हमारा एक बहुत ही दिलचस्प अनुभव रहा है तथा न जाने कितनी ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के सन्दर्भ मे हमें यह उपन्यास भारत के उस दौर को करीब से समझने मे बहुत अधिक मदद भी करता है । फिर चाहे वो उस समय की परिस्थिति वलिउल्लाही तहरीक हो, खिलाफत आन्दोलन हो, पूर्ण स्वराज की मांग हो, मुस्लिम लीग की स्थापना की गतिविधियाँ हो या गांधी जी का भारतीय राजनीति के क्षेत्र मे प्रवेश करना हो। यह रचना हमारी संवेदनाओं को पूर्ण रूप से झकझोर देती है ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक बहुत ही विस्तृत कैनवास पर उकेरी गई खूबसूरत तस्वीर है। जिसमें से पात्र निकल कर सामाजिक सद्भावनाओं के सारे आयामों को पूरा करते हुए नजर आते हैं।

इस उपन्यास मे मंज़ूर एहतेशाम जी ने मुस्लिम खानदान का इतनी बारीकी से चित्रण किया है जिसको पढ़ते ही पाठक के मुख से शब्दों के द्वारा तारीफों के पुल बनने शुरू हो जाते हैं तथा इसमे मुस्लिम समाज की रिवायतें, आदतें,तहजीबें और हिमाकतें जो कि एक सामाजिक सद्भावना सहित मुस्लिम परिवार के लगभग सभी प्रतिरूपों को दर्शाया गया है। इस उपन्यास मे भोपाल और दिल्ली शहर का इतनी खूबसूरती से वर्णन किया गया है की पाठक अपने आपको उस रचना का एक पात्र समझने लगता है परन्तु इस रचना को पढ़ते हुए यह अनुमान लगाना जटिल है कि इस रचना की कहानी रचनाकार की स्वयं की कहानी है या नही परन्तु एहतेशाम जी की भाषा और कथानक पर जो गहरी पैठ है उस उस पैठ के अनुभव से कोई भी पाठक बच नही सकता अर्थात् यदि हम ये कहे कि इस कहानी के द्वारा कथा - साहित्य मे इस कहानी की रचना के मामले मे इस उपन्यास का एक नया प्रयोग किया गया है तो यह गलत नही होगा तथा मंज़ूर एहतेशाम जी ने इस रचना को लिखते हुए बहुत ही सुन्दर तरीके से उन सभी परिस्थितियों का जिक्र किया है तथा इस नए प्रयोग को एहतेशाम जी के द्वारा इतनी सफाई से अमल मे लाया गया है कि पता ही नही चलता कि कब हकीकत और कल्पना आपस मे घुल मिल गए हैं।

एहतेशाम जी की चमत्कारिक लेखनी इस उपन्यास मे सामाजिक सद्भावना के सभी रूपों को भिन्न - भिन्न तरह के नजरियों से दिखाने मे कामयाब रही है तथा एहतेशाम जी कई विचारधाराओं को अपनी रचना के माध्यम से एक समान बेरहमी से उन सबका विरोध करते हुए दिखते हैं। फिर चाहे वो खोखले राष्ट्रवाद की विचारधारा हो या अंधी मजहब परस्ती की विचारधारा हो या फिर बेतुका कम्युनिज्म.. इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा सबकी आलोचना की है। इस रचना मे एहतेशाम जी ने अतिवाद का पुरजोर विरोध किया है एवं सामाजिक सद्भावना के साथ - साथ राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक सद्भावनाओं का बहुत ही सफल प्रयोग किया है

छायाचित्र:-६

पहर ढलते (सन् - २००७ ई.) :- मंजूर एहतेशाम जी का यह सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पहर ढलते' आधुनिक युग का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें इन्होंने सद्भावों का ऐसा समावेश किया है जिससे हम रू-ब-रू होते हुए प्रतीत होते है। यहाँ पर लेखक ने बीहड़ सर्दियों की एक रात के आहिस्ता-आहिस्ता ढलते पहर का वर्णन किया है। इसमे ऐसा प्रतीत होता है की फ़जल को इमर्जेंसी के नाख़ूनों ने पूर्ण रूप से जकड़ रखा है।

इस साहित्य मे एहतेशाम जी ने शहर की आम बस्तियों से दूर एक आलीशान कोठी के अँधेरे और उजाले मे हरकत करते हुए कुछ ऐसे किरदारों को समाहित किया है जिनके द्वारा लेखन मे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पात्रों को अँधेरे मे एक शातिर जासूस की महारत हासिल हो तथा वे पात्र कभी यथार्थ प्रतीत होते हैं तो कभी ऐसी फैन्टेसी की जिसमें कहानी का सृजनकर्ता मानों इसकी रचना करते - करते उसी मे खो-सा गया हो ।

इस कहानी को पढ़ते हुए ऐसा आभास होता है कि हम मुक्तिबोध के काल मे प्रवेश कर रहें है क्योंकि मुक्तिबोध जी की लम्बी कविता 'अँधेरे मे' के चरित्र कुछ इसी प्रकार की कहानी का निर्माण करते हैं इसी वजह से एहतेशाम जी के इस उपन्यास की कहानी मुक्तिबोध जी की 'अंधेरे मे' कविता की तरह प्रतीत होने लगती है।

इस रचना के पात्रों मे नवाब, क़व्वाल, औरतें,ख़ादिम,बेगम, अफसर, मंत्री, व्यापारी, शोहदे आदि सभी अपना अभिनय करते हुए नज़र आते हैं तथा वे सभी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों से बच निकलने का भी अभिनय बख़ूबी अदा करते हुए दिखलाई देते हैं। इस भुतही रचना मे पाखंड, गुरूर, पछतावा, आँसू, फ़रेब, नफ़रत, ईर्ष्या, सूफ़ियाना क़लाम, इश्क, मक्कारी सभी के पुट विद्यमान हैं।

इस साहित्य की रचना करते हुए रात के एक हिस्से की कहानी के बाहर जाने कितनी रातें तथा ना जाने कितने दिन हैं जहाँ पर मंजूर एहतेशाम जी हमें ले जाने का प्रयास करते हैं तथा फिर उसी धारा मे तुरंत वापस भी ले आते हैं तब हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम वर्तमान मे सक्रिय भूतों की बारात के बीचों-बीच विचरण कर रहे है और ऐसा महसूस होता है की हम भी उस कहानी का एक हिस्सा बन गए हैं।

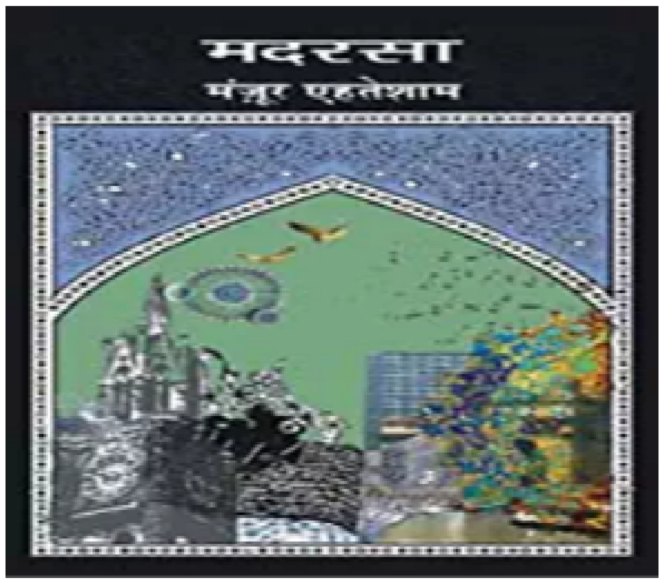

छायाचित्र:-७

मदरसा (सन् - २०११ ई.) :- मंजूर एहतेशाम का उपन्यास 'मदरसा' अपने आप मे एक अद्भुत रचना है इस उपन्यास मे साबिर, मरियम, अलीगढ़ मामू और बान्नगी फूफू के अलावा जायदाद माफिया गनी मियां और सांसद इमरान आलम आदि पात्रों के द्वारा समाज मे फैले द्वेष तथा समाज के प्रबल लोगों का विवेचन किया गया है ।

हम यह कह सकते हैं कि मंजूर एहतेशाम जी ने जिस प्रकार अपने पिछले उपन्यास 'बशारत मंजिल' मे कुछ आकर्षक आदर्शवादी तेवर के साथ भारत के राष्ट्रभक्त मुसलमानों की गांधीवादी छवि समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उसी प्रकार इन्होंने यहाँ भी कुछ इसी प्रकार की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है तथा इनके मदरसा की पृष्ठभूमि हमें कुछ छिन्न-भिन्न प्रतीत होती है।

हमें इस उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि इस साहित्य का लेखन करते हुए मंजूर एहतेशाम जी किसी प्रकार की हड़बड़ी मे नही दिखलाई देते हैं। बल्कि ये बंद दिमागों मे चल रही उधेड़बुन कि कश्मकश मे निरंतर रूप से अपनी रचना मे कार्यरत नजर आते हैं । इनकी इस रचना मे मुंबई, भोपाल, बरेली, अलीगढ़ की छवि दिखलाई पड़ती है जिसमें व्यक्तियों की भावनाओं को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

इस रचना के कुछ प्रसिद्ध पात्र नानीजान, परछाईं और आमिर हैं। जिनके द्वारा सौतेलेपन का भाव व्यक्ति को किस रूप से तन्हा और यतीम बना देता है उसको इनके माध्यम से दर्शाया गया है अर्थात् इसका भाव भी हम इस कहानी मे अनुभव करते हैं और उसके मासूम सपनों पर वक्त की जो मार पड़ती है और जिस तरह उसका एक मदरसा बनाने का ख्वाब टूटता है। यह भी एहतेशाम जी ने बहुत ही सुंदरतम रूप मे दर्शाया है।

एक रोज़ साबिर पर इस राज का खुलासा होता है कि वह बचपन से जिसे अपना पिता मानता आया है वह उसके सगे नही सौतेले अब्बा हैं। जिनकी पहली बीबी से उनको केवल एक ही नही कई संतानें हैं। यह जायदाद मे हिस्सा प्राप्त करने की मुहिम मे शामिल होता है पर वह कामयाबी प्राप्त नही कर पाता और उसकी तालीम भी पूरी नही हो पाती वह अपने इतिहास की तलाश मे बरेली, अलीगढ़ और बान्नगी फूफू के पास जाता है और उसे वहां अलीगढ़ वाले मामू जान से यह मालूमात होती है कि उसकी माँ का निकाह उन्ही की रज़ामंदी से कई वर्ष पूर्व उसकी माँ की उम्र से कई गुना ज्यादा उम्र के व्यक्ति से हुआ था और यह रिश्ता नानी जान को गँवारा न था और बहुत खफा हुई थीं और इस कदर खफा हुईं थीं कि उन्होंने पाकिस्तान जा बसने का फैसला कर लिया और ऊपर से अलीगढ़ मामू से बैर मोल ले ली और पूरी तरह से रिश्ता भी तोड़ दिया।

साबिर को क्रिकेट खेलने का बड़ा शौक था और वह अपनी आजीविका चलाने के लिए रंगाई-पुताई का काम किया करता था। इसके जीवन मे यों तो तमाम कई लड़कियां आईं और गईं किंतु एक लड़की थी अल्का जो एक फिल्म प्रोड्यूसर की बेटी के किरदार मे थी इससे साबिर की अच्छी खासी बातचीत थी परन्तु इससे भी साबिर का रिश्ता ज्यादा दिन तक नही बन सका और अंत मे संपन्न बेदी परिवार की जिस लड़की पिंकी से साबिर ने अपनी मुहब्बत का रिश्ता कायम किया था। उसने मरियम बन कर उसका जीवनसाथी बनने का प्रण लिया परन्तु इस रिश्ते ने कई दिनों तक साबिर को मुसीबत मे डाले रखा जिससे वो हमेंशा परेशान रहता था।

साबिर और मरियम की जब एक बेटी पैदा हुई और वो जब तक वयस्क और विवाह करने योग्य हुई तब तक इन दोनों के प्रेम - व्यवहार के बीच एक बहुत बड़ा फ़ासला आ चुका था। लिहाजा ये दोनों अपने सम्पूर्ण जीवन को एक अजनबी रूप मे व्यतीत करने लगे और साबिर अंततः मदरसे की तामीर का ख्वाब अपनी आंखों मे संजोए हुए वह टेकरी मे एक जमीन के छोटे से टुकड़े की खातिर अपने दंभर खूब जद्दोजहद करता रहा परन्तु वह सपना भी भूमाफियाओं के चलते चकनाचूर हो गया और वह उस ज़मीन के टुकड़े को प्राप्त ना कर सका।

मंज़ूर एहतेशाम जी के इस उपन्यास का ताना-बाना काफी जटिल नही जान पड़ता, परन्तु इसके कुछ अंश ऐसे हैं जो पाठक को उबाऊ प्रतीत होते हैं। इसके यात्रा - वृत्तांत मे जो गति या बहाव पाठक को रचना का पठन - पाठन करते वक्त होना चाहिए वैसा यहाँ प्रतीत नही होता जैसा इनके पिछले उपन्यासों जैसे-- 'सूखा बरगद', 'दास्तान-ए-लापता' और 'बशारत मंजिल' मे पाठक को प्राप्त हुआ है वैसा इसमे नाम मात्र का ही वृतांत जान पड़ता है।

इस उपन्यास मे मुख्य पात्र साबिर के अलीगढ़ मामू शेरो-शायरी के बहुत ज्यादा शौकीन रहे हैं वे जब भी बात करते हैं तो अक्सर फिल्मी गीतों के उद्धरण बात-बात मे उनकी जुबान पर आ जाया करता है और जब साबिर का मरियम से मनमुटाव हुआ तो उसके पश्चात साबिर गुलाम अली की शायरी और मदिरा के प्याले का शरणार्थी बना दिखलाई पड़ता है और इसकी नेकनियति का सबूत उसकी आँखों मे मदरसे की तामीर से हमें नजर आ जाता है परन्तु उसके अपने खुद के जीवन मे ऐसे उच्चादर्शों की कहीं कोई ज्यादा प्रवृत्ति नजर नही आती । जिस दमखम की आशा हम रचना को पढ़ते हुए साबिर से करते हैं वह उसमे नाम-मात्र का भी नज़र नही आता और यहाँ पाठक साबिर को एक दहकती हुई मशाल की तरह देखना चाहता है परन्तु वह एक शांत जल की तरह न जाने किस उधेड़बुन मे लगा रहता है।

एक तरह से देखा जाए तो साबिर का अभिनय उस सामान्य व्यक्ति से बहुत मिलता-जुलता प्रतीत होता है जो बिल्कुल अकेला और बेसहारा है जिसकी दुनिया मे न तो उसके रिश्तेदार उसका साथ देते हैं और न ही उसके मित्र। उसे देख कर ऐसा लगता है कि उसका आत्मविश्वास पूरी तरह से डगमगा गया हो। जिसका सम्पूर्ण जीवन एक यतीम की तरह बीत रहा हो और जिसकी माँ ने अपने शौहर के जीवित होते हुए भी अपने से बड़ी उम्र के व्यक्ति के संग संबंध बना रखा हो और उसी से विवाह भी भविष्य मे कर लिया हो, और तो और जो अपने बाप की परछाईं से हू-ब-हू मिलता-जुलता हुआ प्रतीत होते हुए अपने आप को निसहाय समझे और मदरसे के लिए एक अदद .जमीन का टुकड़ा खोजता हुआ अंत मे 'हारे को हरिनाम' पर हार कर वापस आ गया हो, साबिर ऐसे ही थके-हारे शख्स की नुमाइंदगी इस उपन्यास मे करता हुआ नजर आता है।

इस रचना को पढ़ते हुए हमारे मस्तिष्क मे एक सवाल उठता है कि मंजूर जी इस उपन्यास के आधार पर कहना क्या चाहते हैं? तो इसका उत्तर हमने मंजूर एहतेशाम जी से प्रत्यक्ष रूप से जानने का ही फैसला किया और उनसे ही प्रत्यक्ष रूप मे साक्षात्कार करके इसका उत्तर प्राप्त किया उन्होंने मदरसे के संदर्भ मे बताते हुए इस प्रश्न का उत्तर यह दिया कि - " इसकी काट उपन्यास के मर्म मे ही है। किसी भी उम्दा रचना को लेकर यह कहना कभी संभव नही होता कि इसका उद्देश्य अमुक है...बल्कि वह हमारे ही जीवन का एक ज्यादा उजले प्रकाश मे बुना गया चित्र होता है जिससे हम न जाने कितनी दिशाओं से रोशनी पाते हैं." और इस उत्तर से हमने यह अनुमान

लगाया कि इस रचना का लेखन करते हुए शायद इनकी यही वजह रही है कि ये किस्सागोई की प्रचलित मार्ग पर ये सरपट दौड़ते हुए नजर नही आते और किसी व्यापक विमर्श से अलग इस रचना का औचित्य स्थापित करते हुए हम इसे समकालीन हिंदी उपन्यास की तुलना मे लय और ताल के बिना रची हुई रचना की श्रेणी मे रख सकते हैं।

मंजूर एहतेशाम जी ने भले ही इस उपन्यास की किस्सागोई की गति पर उतना ध्यान ना दिया हो, परन्तु देश के हालातों से गुज़रते हुए एक आम आदमी की स्थिति को एक आइने की तरह पाठक के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और कहीं-कहीं इन्होंने आम मुसलमान के हालातों का वर्णन भी यहाँ प्रस्तुत किया है।

मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों मे व्याप्त सद्भावनाओं का हम निम्नलिखित रूप मे वर्णन कर रहे हैं :- **सद्भावना के बिन्दु:-**

१:- पारिवारिक सद्भावना।

२:- सामाजिक सद्भावना।

३:- धार्मिक सद्भावना।

४:- सांप्रदायिक सद्भावना।

५:- सांस्कृतिक सद्भावना।

६:- भाषाई सद्भावना।

७:- राष्ट्र के प्रति सद्भावना।

-: पारिवारिक सद्भावना :-

भूमिका :- 'परिवार' यह एक ऐसा शब्द है जो कि किसी भी जीव से अछूता नही रहा है। हर जीव एक परिवार का हिस्सा होता है अर्थात् परिवार एक ऐसी संस्था या ऐसा संगठन है जो मानव उत्थान के लिए एक शानदार खोज मानी जाती है और प्राचीन लोगों द्वारा मानव जाति के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार माना जाता है। इस संस्था मे सभी लोगों का एक साथ परिवार मे रहना अपने - आपमे महत्व रखता है। जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है एवं हर इंसान परिवार के प्रति सद्भाव अवश्य रखता है।

परिवार एक ऐसे विश्वविद्यालय के समान है जिसमें मैत्री संबंध, सहभागिता, आतिथ्य, प्रेम-संबंध, आत्म-विश्वास का निर्माण, देखभाल, सीख एवं भावात्मक, समायोजन आदि जैसे विषयों को पढ़ाया जाता है। इसमे माता - पिता, बुज़ुर्ग, परिवार एवं समाज आदि इस विश्वविद्यालय के शिक्षक मानें जाते हैं। जिस प्रकार किसी विश्वविद्यालय मे शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जाती है उसी प्रकार एक परिवार के शिक्षक अपने परिवार के बच्चों को या शिक्षार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं। जिससे वह बालक पारिवारिक सद्भाव को समझता है तथा अपने परिवार के प्रति उसे लगाव होता चला जाता है।

पश्चिमी अवधारणा के अनुसार परिवार एक संस्था है वहीं हमारी भारतीय अवधारणा यह है की परिवार एक ऐसा माध्यम है जिस माध्यम से हर व्यक्ति अपना धर्म निभाता है अर्थात् धर्म सर्वोपरि है और यह वह रास्ता है जिसमें मानव जाति अपना कर्त्तव्य निभा सकती है और अपना उद्धार कर सकती है एवं इस आधुनिक समाज के परिवार मे कई समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं और इन सबका निवारण उस परिवार के शिक्षक करते हैं ।

परिवार ऊपर से एक स्थूल संरचना दिखाई पड़ता है जिसमें कुछ व्यक्ति देश-काल एवं आवश्यकताओं तथा अपनी क्षमताओं को बनाए हुए एक घर मे निवास करते हैं परिवार बाह्य तौर पर यदि स्थूल संगठन है तो सद्भाव के स्तर पर इस संगठन के पीछे रक्त - संबंध, भावनात्मक-संबंध, अपने-पराए का बोध, वात्सल्य इत्यादि न जाने कितनी मानवीय संवेदनाएं और वृत्तियां सक्रिय दिखाई पड़ती है और एक ही परिवार मे रहते हुए उसके सभी सदस्य एक - दूसरे को एक समान नही चाहते हैं। इसी प्रकार कहीं-न-कहीं वैयक्तिकता परिवार के विघटन का कारण बन जाती है एवं स्थिति चाहे जो भी हो उसे हम परिवार ही कहते हैं।

जब व्यक्ति परिवार मे अपने बड़ों से व्यवहार करता है तभी उसे ज्ञात होता है कि समाज मे लोगों के साथ कैसा व्यवहार करना है अथवा परिवार मे रहकर ही व्यक्ति सामाजिक व्यवहार एवं नैतिक आचरण की शिक्षा को अपने व्यक्तित्व मे उतारता है। इसी वजह से परिवार को व्यक्ति की प्रथम पाठशाला माना जाता है। वास्तव मे यह कहा जा सकता है कि परिवार ही व्यक्ति के जीवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए उसके व्यक्तित्व, सोच-विचार, आचार-व्यवहार आदि सभी का निर्माण करता है और संसार के विभिन्न भागों मे परिवार के स्वरूपों मे विविधता दिखाई देती है एवं इस विविधता का मूल कारण, स्थान-विशेष की भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही हैं।

वैसे तो समाज मे व्यक्ति कई प्रकार के परिवार मे निवास करता है और यह भी कहा जा सकता है की भारत मे परिवारों के अनेकों रूप देखे गए हैं, जैसे कि - पितृ - सत्तात्मक रूप, मातृ- सत्तात्मक रूप, केंद्रीय और संयुक्त परिवार आदि । लेकिन इस औद्योगीकरण के युग मे परिवार के स्वरूप मे काफी तरह के बदलाव देखे जा सकते हैं अथवा समाज मे परिवार का जो रूप

पहले था उसमे धीरे - धीरे अब पूरी तरह परिवर्तन आ चुका है । सदियों से चलती आ रही ये मान्यताएं अब बिल्कुल लुप्त होती नज़र आ रही हैं । जहाँ परिवार मे दादा - दादी, माता - पिता, चाचा - चाची, ताऊ - ताई आदि सबका पारिवारिक सद्भाव नज़र आता था परन्तु आज उसके स्थान पर अब सिर्फ पति - पत्नी एवं उनके बच्चे रह गए हैं ।

जहाँ पर परिवार संयुक्त रूप मे था वहीं आज परिवार एकल रूप मे परिवर्तित अर्थात् सीमित हो गया है और इस तरह बदलते पारिवारिक परिदृश्य से समाज का रूप भी बदलता चला जा रहा है जिसमें पारिवारिक सद्भावना की कमी देखने को मिल रही है।

आधुनिकता की इस अंधी दौड़ मे पुराने पारिवारिक संबंधों का टूट जाना और पारिवारिक चेतना का ह्रास तथा संयुक्त परिवारों का एकल परिवारों मे बट जाने की प्रक्रिया ने विघटन ला दिया है जैसे विवाह संबंधों मे तलाक, अलगाव, पारिवारिक मूल्यों का विघटन ही पारिवारिक मूल्यों के विघटन का मूल कारण है । इस विघटन का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर भी पड़ता है तथा जो भावना और भावात्मक तत्व, दया, प्रेम, सहानुभूति, लगाव आदि सद्भाव परिवार के विकास द्वारा ही प्राप्त होते हैं और इन्हीं सब का मिला - जुला रूप पारिवारिक सद्भाव कहलाता है यह सद्भाव वहीं ज्यादा मिल सकेगा जहाँ पर संयुक्त परिवार होगा । एकल परिवार मे यह सद्भाव इसलिए कम हो जाता है क्योंकि इसमे परिवार के सदस्यों की संख्या कम हो जाती है और इसके साथ - साथ प्रेम तथा सद्भाव भी कम हो जाता है ।

पारिवारिक सद्भावना के आधर पर मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों मे वर्णित पारिवारिक सद्भावों पर हम एक महत्वूर्ण दृष्टि केंद्रित कर रहे हैं। इन्होंने अपनें उपन्यासों मे पारिवारिक सद्भावना का बहुत ही मार्मिक प्रस्तुतीकरण किया है। जिसके आधार पर आज के युग मे इनकी कहानियाँ एवं साहित्यिक रचनाएं पारिवारिक सद्भावना के आधार पर अपना स्थान प्राप्त किए हुए हैं।

आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने पारिवारिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे पारिवारिक सद्भावना को अपने सुप्रसिद्ध उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे पारिवारिक सद्भावना जागृत हो उठती है । इनके उपन्यासों मे इसकी पुष्टि दृष्टिगोचर होती है।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे पारिवारिक सद्भावना :-

मंज़ूर जी के कई उपन्यासों मे इस सद्भावना की छटा विद्यमान है इनके उपन्यासों मे व्याप्त पारिवारिक सद्भाव के उदाहरण इस प्रकार हैं जो इस सद्भाव की पुष्टि करते हुए नज़र आते हैं।

- : कुछ दिन और मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना : -

" 'राजू... ' मैंने उनके कन्धे पर अपना सिर रख दिया था । राजू मुझे धक्का देकर एकदम अलग हो गए थे । 'कुँवारी'उन्होंने फुफकारते - से स्वर मे कहा था, 'फिर शादी - ब्याह का ढकोसला रचाने की क्या जरूरत थी ।' और राजू अपना सिर पकड़कर बैठ गए थे । 'तुम कल ही अपने घर वापस जाओ । मैं नही रह सकता.... और.... मैं सोच भी नही सकता था कि तुम ऐसी निकलोगी । कौन था वह ? बताओ, कौन था ?.... ' "१

" सुनकर राजू कुछ देर तक चुप रहे थे । अपनी चुप्पी से शायद वह यह बताना चाहते थे कि मैं ग़लत शब्दों मे बात कह रही थी। फिर थोड़ी देर बाद अपने ख़ास सहजता वाले ढंग से उन्होंने मुझे समझाया था कि वह मुझसे बेइन्तहा प्यार करते हैं। ये और जाने क्या-क्या कि वह मेरे लिए कुछ भी कर सकते हैं - क़त्ल,डाका, चोरी।.... और मैं अपने आसपास फैली आराम - आसाइश की चीज़ों को देखती रही थी - कमरों मे फिट कूलर्स, रेफ्रीजिरेटर, बाहर कम्पाउंड मे खड़ी कार, पहनने के क़ीमती कपड़े, ख़र्च करने के लिए हज़ारों रुपए, नौकर-चाकर और मुझे लगा था, प्रेम तो राजू मुझसे करते हैं।"२

" अन्त मे राजू ने जब घर के बाहरवाली दुकानें भी बेचनी चाही थीं जो क़ानूनन मम्मी की प्रॉपर्टी थीं तो मम्मी ने साफ़ इनकार कर दिया था । 'जानती हो, बुढ़िया क्या कह रही थी ? ' उस रात राजू ने तीन - चार सिगरेट एक के बाद एक फूँकने के बाद कहा था --'कह रही थी, कुछ हक़ दीदी का भी है और उसे भी कुछ मिलना चाहिए। शादी जैसे दीदी ने ख़ुद अपने पैसे से की हो ।' सब साले ऐसे ही हैं। एकदम निराशा उनके शब्दों मे जैसे गहरी हो गई थी।' कुछ दिनों की बात है, कोई साला ये नही समझता । अभी तो हमारी हालत घरवालों को ही मालूम है न, कल जब बड़ी उधारी वालों को पैसा नही मिलेगा, तो छोटे - छोटे भी फ़ौज लेकर हमला कर देंगे । फिर आएगा मज़ा । दिवालिया। सब नीलाम हो जाएगा । साले सिर छुपाने को किसी को जगह नही मिलेगी । हो जाए, हमने भी सोच लिया, अब तो ऐसा ही हो जाए ।'३

" 'कल ही, 'मैंने अपनी आवाज़ ऊँची करते हुए कहा था— 'मैं और अंशुल । ' राजू का पूरी ताक़त से उठा हाथ मेरे मुँह पर पड़ा था । पहला, फिर दूसरा, फिर तीसरा । वह पूरी ताक़त से मार रहे थे और उनके मुँह से गालियाँ-ही-गालियाँ निकल रही थीं । उन्होंने गिरेबान मे हाथ डालकर मेरा ब्लाउज़ फाड़ डाला था और लात मारकर दीवान के पास बिछी टेबल को गिरा दिया था । टेबल पर रखी

दवा की शीशियाँ और दूसरा सामान आवाज़ें करता हुआ गिरा था और अन्दर बेडरूम मे सो रहा अंशुल जाग गया था । उधर अंशुल रो रहा था, इधर राजू चिल्ला रहे थे । 'पति और यार मे कुछ अन्तर होता है, कमीनी । तू क्या समझती है, इतनी आसानी से छुटकारा मिल जाएगा ? तुझ जैसी तो मैं दसियों ख़रीदकर रख सकता था । मुझे इस तरह मिटा के..., ' एकदम पागलों की तरह वह फिर से टूट पड़े थे । मुझे अपने कपड़े फटने– चिरने की आवाज़ें आती रहीं और मैंने भी हाथ डालकर उनका गिरेबान फाड़ डाला था । उनका माथा मेरे होंठों से टकराया था और मेरा होंठ फट गया था, ख़ून बहने लगा था । हम दोनों लड़ते रहे थे, और फिर... मैंने राजू को बाँहों मे कसकर भींच लिया था । मेरी उँगलियाँ उनकी पीठ को सहलाने लगी थीं, उनकी साँसें मुझे अपने मे घुलती लगी थीं... उनकी जीभ मे सिगरेटों की मीठी कड़वाहट और शरीर से आती पसीने की हलकी-सी महक—राजू के पसीने की... आकाश मे तैरता चाँद... नदी मे चलता शिकारा... फूल... हवा मे डोलते बादल... चहचहाते पक्षी... बचपन से लेकर आज तक जो कुछ मैंने दिल से चाहा था । "४

" 'तुम बहुत कमज़ोर हो गई, ' उसने दोपहर को मेरे लिए सूप बनाते हुए कहा था, 'कुछ दिन अच्छी तरह से आराम करो ।' मुझे इस बात का अन्दाज़ा था— यही कि मेरे भाई–बहन सबसे ज़्यादा मुझे ही चाहते हैं । जाने उसके कारण क्या रहे हों । जो भी हों, लेकिन पप्पू, ज्योति और घर के सब छोटे भी, न केवल मुझे चाहते थे, बल्कि एक ख़ास तरह से मुझसे डरते भी थे । कोई भी काम शुरू करने से पहले, कहीं एडमिशन लेते समय, कोई भी बड़ा निर्णय करने से पहले ये लोग मेरी राय ज़रूर लेते थे। अब जब मैं सबसे इतनी दूर थी, तो भी ख़त लिखकर ही ये लोग कम-से-कम मुझे बताते जरूर थे । यह सम्बन्ध इस प्रकार जाने कितने दिन और चल पाएँ, क्योंकि मुझे लगता था, फ़र्क़ तो हर बात से पड़ता है। कल पप्पू आया था, यहाँ के हालात देखकर गया, उसके रवैए मे कुछ-न-कुछ अन्तर पाना बिलकुल स्वाभाविक है।"५

इन उपर्युक्त सभी पंक्तियों मे मंज़ूर एहतेशाम जी ने स्वतंत्र रूप से पारिवारिक सद्भावना का प्रस्तुतीकरण किया है। उपर्युक्त उदाहरण इसके पुष्टि तथ्य हैं जो कि पारिवारिक सद्भावना की मौजूदगी इनकी इस रचना मे दर्शा रहे हैं ।

इस उपन्यास मे एहतेशाम जी ने राजू तथा उसकी पत्नी के साथ प्रेम संबंध को दर्शाया है तथा इस कहानी का मुख्य पात्र अपनी पत्नी से बहुत अधिक प्रेम करता है एवं उसके बिना रह भी नही सकता।

इस रचना मे मंज़ूर जी ने पति - पत्नी के प्रेम को तो दर्शाया ही है तथा उसके साथ -साथ बेटे 'अंशुल' के लिए भी राजू के पिता रूपी कर्तव्य को भी दर्शाया गया है।अर्थात् राजू के व्यापार नुकसान के बावजूद भी वह अपने परिवार के लिए सारी सुख - सुविधाओं की व्यवस्था करने मे लगा रहता है।

-: सूखा बरगद मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना :-

" परवेज़ से हमारी पहली भेंट दस साल पहले हुई थी, जब वह अपनी शादी के लिए यहाँ आए थे। वह हमारे - मेरे और छोटे भाई सुहेल के फूफीज़ाद भाई थे, जिनका परिवार पार्टीशन के समय पाकिस्तान जाकर बस गया था। फूफी यानी परवेज़ की अम्मा की ख्वाहिश थी कि अपनी छोटी-बहन, हमारी छोटी फूफू की बेटी रिहाना को बहू बनाएं और जैसा कि हमें बताया गया था, परवेज़ ने मां की खुशी मानकर यह शादी मंजूर कर ली थी। लेकिन उनसे मिल और थोड़ा- बहुत समझकर मैं यह बात किसी तरह नही पचा पाई थी कि उन- सा प्रौढ, गंभीर, पढ़ा -लिखा और दुनिया -जहान देखा व्यक्ति सिर्फ अपनी मां की मर्जी पूरी करने के लिए, आंखों से दूर एक-दूसरे देश मे पली - बढ़ी लड़की से, जो उनसे उम्र मे भी खासी कम हो, शादी कर सकता है। लेकिन हम लोग आपस मे अजनबी थे, सवाल करने का कोई अवसर नही था। सोचा कुछ भी जाए, पूछना औपचारिक संबंधों का अंग है ही नही। "६

" बचपन का सुहेल याद आता है जिसका अम्मी और अब्बू जरूरत से ज्यादा खयाल करते थे। एक अजीब बात यह कि सुहेल सोते मे हँसता, बाते करता और चलता था। एक बार जब अब्बू कहीं बाहर गए थे, सुहेल सोते मे बड़बड़ाता सेहन तक चला गया था, जब हड़बड़ा कर अम्मी ने मुझे जगाया और मै अम्मी के साथ डरी - सहमी सहन तक आई थी। अम्मी सुहेल पर दरूद पढ़कर दम करती, आवजें देकर, झाझोंडकर होश मे लाने की कोशिश करती रहीं थीं। वह अम्मी की आवाज़ों पर हूँ -हाँ करता रहा था और अंत मे बिस्तर पर आकर सो गया था। अम्मी कितनी रात तक क्या - क्या पढ़कर उस पर दम करती रही-डर के बाद भी मेरी नींद से भरी आंखें साथ न दे पाईं। इसके बाद फिर कभी अब्बू रात को हमें अकेला छोड़ कर कहीं नही गए जब भी जाते, रिश्तेदारों मे से किसी को घर छोड़ जाते और जिस चीज से मैं हमेंशा शर्मिंदा रहती वह यह कि सुहेल, शायद दस-ग्यारह बरस की उम्र तक जब स्कूल मे दाखिल हो चुका था, छठे- सातवें क्लास मे पढ़ रहा था, बिस्तर मे कपड़े गीले कर लेता था। उसकी वजह से अम्मी ने रिश्तेदारों मे दिन- भर से ज्यादा के लिए जाना छोड़ दिया था, क्योंकि सुहेल के बिस्तर मे रबड़ लगाना जरूरी होता था।"७

" अब्बू ने अपने बड़े भाई अब्दुल हफ़िज़ खाँ से संबंध इस हद तक खराब थे कि दोनों घरों मे शादी - व्याह पर आना - जाना नही था। कारण - ताया अब्बा को अब्बू के रहन- सहन पर ऐतराज़ था। वह खुद बहुत मजहबी होने के नाते न तो अब्बू का खुदा मे यकीन न रखना समझ पाते थे, न उनके साथ अच्छा- खासा धंधा करने के बजाय यह ' दो ' कौड़ी की वकालत का पेशा। बहरहाल, अब्बू भले ही अपने बड़े भाई के सामने न जाएं, दिल से बहुत इज्जत और प्यार करते थे, और एक

तरह से बाप की जगह मानते थे। वैसे भी अब्बू के पिता की मौत तो उनके बचपन मे ही हो गई थी और उनकी परवरिश बड़ी फफू और ताया अब्बा ने ही की थी। ताया अब्बा कोयले के बहुत बड़े ठेकेदार थे और उनके यहाँ ट्रक से लेकर जीप - कार सबकुछ था। उनके तीन बेटे थे, सबसे बड़े तो लगभग अब्बू की ही उम्र के रहे होंगे। कोई भी ठीक से पढ़ न पाया था और सब ताया अब्बा का धंधे मे हाथ बँटाते थे। "८

" विजय ने जरूर बात को संभालने की कोशिश की होगी, सुहेल को जवाब दिया होगा, अम्मी को समझाया होगा, लेकिन अम्मी को यह बात लग गई। अकेले मे रोने - पीटने के बाद भी जब उनको शांति नही मिली तो उन्होंने सुहेल की शिकायत खासकर अब्बू से की। अब्बू ने सुहेल से कुछ कहा नही, मुझे बुलाकर समझाया और कहा कि किसी और की नही, वह सिर्फ मेरी मर्ज़ी देखेंगे। मेरा फैसला मानकर ही वह कुछ करने का निर्णय लेंगे। मैं इस प्रकार की बातों मे उलझने की बजाय अभी अपनी पढ़ाई पर ध्यान दूं; शादी के लिए बहुत उम्र पड़ी है। मेरे उठते - उठते एक बार फिर उन्होंने यकीन दिलाया था कि होगा वहीं जो फैसला मैं करूंगी।"९

" सुहेल को कॉलेज से स्कालरशिप मिल रही थी इसलिए उसकी फीस के खर्चे की अब्बू को इसी विशेष चिंता नही थी। वैसे भी हम बढ़ते शहर के परिवर्तनों के साथ कदम - से - कदम मिला कर भले न चल पा रहे हों, बढ़ती दूरियों को देखते हुए हमारे पास अपनी सवारी भले न हो, नए शहर की नई रूपरेखा से मेल खाता हमारा पुराना मकान भले ही नए नक्शे पर न बन पा रहा हो, लेकिन अब्बू की कमाई हमारी रोज़ की जरूरतों के लिए काफी थी। उनका काला कोट हमारे लिए सुरक्षा का प्रतीक बन गया था। वह जी - जान से मेहनत करते और हमें किसी चीज की कमी न महसूस होने देते । "१०

इन उपर्युक्त पंक्तियों मे एहतेशाम जी ने सूखा बरगद मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना को दर्शाने का पूर्ण प्रयास किया है इस साहित्य मे इनके पात्र अपने परिवार के प्रति बहुत स्नेह लिए हुए हैं तथा मित्रों मे भी एक पारिवारिक स्नेह हमें यहाँ प्राप्त हो जाता है।

- : दास्तान - ए - लापता मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना :-

" हर बार जब भी मैके से लौटती थी, तो अपनी एक क़िस्त वहीं छोड़ आती थी। मेरा मतलब दहेज़ और मालो - असबाब जैसे सांसारिक साधनों को चोरी से ले जाकर पीछे छोड़ आने से क़तई नही, वह सब तो अभी-भी मेरे ही यहाँ पड़ा है । मेरा इशारा आत्मा की ओर है जिसे धारावाहिक वह ससुराल से मैके ढोती रही और अब, इस आख़िरी बार, जब वह अपने घर गई तो आत्मा की अंतिम क़िस्त का साथ उसकी समूची देह ने भी दिया । जब उसकी आत्मा और देह ही लौटने पर राज़ी नही हुए तो मेरी बेटियाँ तो अपनी माँ के अधिक निकट हैं ही, वह भी उसी के साथ रुक गईं । क़ाफी दिन हो गए इसको भी।"११

" फिर एक दिन वह भी आया जब लगातार सीटियों के बीच, चौकन्ने होकर, लोगों ने तोते के मुँह से अम्मी जान ••• अम्मी जान ••• अम्मी जान की रट सुनी थी और आश्चर्यचकित रह गए थे । ' कलमा ', ' सलाम ' और ' तशरीफ़ लाइए ' इसके बाद की मेहनत का नतीजा थे । यह अपनी जगह , इसके अलावा तोते ने अम्माँ के सारे कामों के वक़्तों को इतनी खूबी से समझ लिया था कि खाने का वक्त़ हो, नमाज़ का या सुबह या दोपहर उनके सोकर उठने का, उन्हें किसी अलार्म-क्लॉक की ज़रूरत नही रही थी । " अम्माँ, " ज़मीर एहमद ख़ान ने एक बार अम्माँ को छेड़ने की खा़तिर कहा था।" कहानियों मे अक्सर सुना है कि देव की जान तोते मे होती है । क्या ऐसा मुमकिन है ? "१२

" यह भी ठीक था । पंद्रह साल पहले भाई मियाँ के कारोबारी हालात ऐसे नही थे जैसे आज थे । जो आत्मविश्वास और पुख़्तापन अब उनमे दिखाई देता था तब नही था । इसके अपने कारण थे जिनकी शुरुआत भाई मियाँ के बचपन से हो चुकी थी। भाई मियाँ को उनकी मर्ज़ी के खिलाफ़ अब्बा ने दीनी मदरसे मे पढ़ाना चाहा था और यहीं से उन दोनों के बीच एक आपसी मतभेद पैदा हो गया था । भाई मियाँ की कोई भी शिक्षा पूरी तरह नहीफ़ू हो पाई थी । फिर धंधे मे अब्बा के साथ भाई मियाँ के बुनियादी स्वभाव का अंतर और उभरकर सामने आया था और अंततः भाई मियाँ ने अपना काम अलग करने का तय किया था । भाई मियाँ अपना काम अपनी तरह से करना चाहते थे और अब्बा के उसूल कुछ और थे।"१३

" यहीं बेटे, जहाँ अब तुम्हारी फफू की दुकानें बन गईं । पहले दादा अब्बा का लकड़ी का पीठा था जहाँ आराकश हाथ से लकड़ी चीरते थे। वहीं एक सार थी जिसमें दादा अब्बा ने भैंसे पाली हुई थीं। हम रोज़ फ़जिर के वक़्त उठकर दूध लगवाने जाते। फिर कुछ और बड़े हुए तो कभी-कभी दूध बेचने की ज़िम्मेदारी भी सौंप दी जाती। सेर- पाव- छटाँक का ज़माना था, इन लीटर साहब ने अवतार नही लिया था तब। आसपास चारों तरफ़ खुले मैदान थे और हरियाली। कभी - कभी भैंसें चरानेवाले कुंदन के साथ हम भी हो लेते । पीछे कछवाड़े थे। घास के मैदान और रेलवे लाइन के नीचे से बहकर पातरा निकलती थी। खूब घूमते ।"१४

" लेकिन समय, चाहे वह लंबी बीमारी हो या बीमारी के बाद पूर्णतः सेहतमंद होने का इंतज़ार, बहरहाल बीत जाता है। अलीगढ़ के खाते मे लिखा गया साल भी लगभग ख़ात्मे के क़रीब था और पिछले महीनों अब्बा को अपने ख़तों मे दबे-छिपे अल्फ़ाज़ मे वह यह बताने की कोशिश करता रहा था कि आगे वह अपने शहर मे ही रहकर पढ़ना चाहता था । कारण - अलीगढ़ मे दिल नही लगता । दिल क्यों नही लगता ? घर और भोपाल की याद सताती है । इसके बावजूद अब्बा ने शायद यही सोचा होगा कि बरखुरदार । दिल न लगने की बात तुम जैसे समझदार लोगों को जैब़ नही देती । किसी भी संवेदनशील व्यक्ति का दिल कभी इस जहान मे लगा है जो तुम्हारा लगे । बहाने ढूँढने पड़ते हैं, खुद को किसी तरह दिल के लगने का धोखा देना पड़ता है। वक्त बड़ा उस्ताद है, अज़ीज़म । इस बार जब तुम भोपाल लौटोगे तो पाओगे कि दिल तो तुम्हारा अब यहाँ भी नही लगता । कि कोई फ़र्क़ पड़ता नही, चाहे तुम अपने शहर मे रहो या किसी अजनबी जगह मे जा बसो । दरअसल अजनबियों से तो फिर भी यह उम्मीद की जा सकती है कि वह अपने बनें लेकिन जो अपनाइयत के दावेदार हैं उनसे परायेपन के ख़तरे के सिवा और क्या हो सकता है। इस बार वापस आने पर तुम खुद अपने शहर के परायेपन को समझोगे और वक्त़ आने पर इस दिल के न लगने या घर की याद आने जैसे बचकाना ख़यालों पर खा़क डालते हुए वापस लौट आओगे । फिर इसमे भोपाल और अलीगढ़ की ही क्या कै़द, तुम दुनिया मे जाने कहाँ- कहाँ रहोगे, इस दिल और याद के बारे मे कभी-कभार लाचारी से सोचते हुए । जिंदगी का बुनियादी तका़जा़ ही असल मे चलते -फिरते है । अपने लक्ष्य को पाने की भाग-दौड़ है, वह जिसके मुक़द्दर मे जिस जगह भी लिखी हो । सोचो, तुम्हारे आबा और अजदाद अफ़ग़ानिस्तान के किस खे़ल और कौन- से क़बीले के लोग थे और उन्हें अपने घर से कितने हज़ार मील दूर यहाँ भोपाल आकर बसना था । किसलिए ? यहाँ का सनसेट निहारने ? तालाबों के किनारे तफ़रीह और गोटें करने ? वक़्त और ज़िंदगी का तका़जा़ कह लो इसे या ज़मीन का बुलावा जो उन्हें खींचकर यहाँ लाया था, किसी की याद या किसी से रिश्तेदारी की कोशिश नही । न सरदार दोस्त मोहम्मद ख़ान उनका दोस्त था और न रानी कमलापति से उन्होंने राखी बँधवाई थी । अपनी इन बुज़दिली की अदाओं को तुम न भी छोड़ना चाहो तो ज़िंदगी इन्हें तुमसे छुड़वा के छोड़ेगी । एक उम्र मे सभी तुम्हारी तरह होते हैं, शायद हम खुद भी इससे ज्या़दा भिन्न न रहे हों ।"१५

एहतेशाम जी अपने साहित्य दास्तान - ए - लापता की इन पंक्तियों मे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनके इस उपन्यास मे पारिवारिक सद्भावना किस स्तर की है एवं पाठक को यह रचना पढ़ते हुए क्या अनुभूति होती है। इस रचना मे १५ वर्ष पूर्व के अनुभव को पारिवारिक सद्भाव के रूप मे दर्शाया गया है।

इन उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें पारिवारिक सद्भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । इस उपन्यास मे एक माँ का बेटी के लिए सद्भाव, अम्माँ का ज़मीर अहमद के प्रति सद्भाव, अब्बा के साथ भाई मियाँ का सद्भाव आदि को दर्शाया गया है।

-: बशारत मंज़िल मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना :-

" मिर्ज़ा जमाल बेग के लिए यह सूरतेहाल अजीब थी : व्यस्त होकर बेटी से दामाद के दूर हो जाने का दुख भी था और दामाद के रियासत मे महत्व हासिल करने की खुशी भी थी। दामाद के कारण अब रियासत मे ख़ुद उनका भी रुतबा हर तरफ बढ़ गया था। इसके साथ ही यह भी बिल्कुल सच था कि ज़ीशान अली की इंक़िलाबी गतिविधियों की ख़बर उन्हें आख़िर तक नही हो पाई थी न जहाँआरा बेगम को जिनके पास, बहरहाल, शौहर की हैसियत से ज़ीशान अली ख़ान का आना-जाना अन्त तक रहा था, न मिर्ज़ा जमाल बेग के घर मे अन्य किसी को।"१६

" बन्दा अली ख़ान की शादी हुई थी और उसी शानो-शौकत से हुई थी जिसकी मिर्ज़ा जमाल बेग को तमन्ना थी। वह खुद तो बारात मे जा नही सके थे और लाला धनपत राय ने ख़ानदान के बुज़ुर्ग की हैसियत से नुमाइन्दगी की थी। मिर्ज़ा साहब ने बन्दा अली के सिर पर हाथ रखकर, उन्हें दुआएँ देकर बारात को रवाना किया था। उनके जाने के बाद वह थककर बिस्तर मे लेट गए थे और गहरी नींद से शतरंज खेलते हुए मिर्ज़ा साहब को शाह से बचने के मशवरे देने लगे थे। रुख़्सत के बाद बन्दा अली ख़ान की नाज़ुक, खूबसूरत, शर्मीली दुल्हन, माहरू ज़मानी ने उन्हें ससुराल मे दाख़िल होते ही आकर सलाम किया था और उन्होंने दुआओं के साथ उसे कानों के लिए याकूती बुन्दे और एक क़ीमती जवाहर का सेट सलामी मे दिया था। उस समय वह स्वस्थ और चौकन्ने, सबसे हँस-बोल रहे थे। अगले दिन वलीमे की बड़ी दावत थी और उसके बाद दावतों का सिलसिला शुरू हो गया था। दूर-दूर से आए मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़ो की जा रही थी।"१७

"—अपनी उम्र का तजुर्बा, उन्होंने कहा था—हम अल्फ़ाज़ मे थोड़ी समझा सकते हैं। बस यह समझो कि हमारा दिल हमसे कहता है। दिल की बात रखने की ख़ातिर। हम अभी शादी नही मँगनी की रस्म के लिए कह रहे हैं। बेशक, पहले अपनी तालीम मुकम्मल करो, जो बनना चाहते हो बनो, उसके बाद शादी का सोचना।"१८

" ऐसे एक दम्पति की पहली औलाद थी अमीना जिसके जन्म पर नजीबुल्लाह को महसूस हुआ था कि एक अहम फ़रीज़ा, बच्ची की परवरिश के बाद उसकी शादी का, उनके ज़िम्मे दर्ज हो गया था। यह सब उसी तरह किया जाना था जैसी उनकी पारिवारिक परम्परा थी। खुशियाँ मनाई गई थीं, लड्डू बँटे थे, लोगों ने अछवानी-सुटीरे खाए थे। बाक़ी लोग तो व्यस्त हो गए थे लेकिन कौसर जहाँ को हर बीतते पल के साथ एक चिन्ता खाती रही थी : जब से उनकी बेटी ने जन्म लिया था उन्होंने उसकी आवाज नही सुनी थी। दाई की उसको रुलाने की तमाम कोशिशें असफल रही थीं और बेटी इस तरह ख़ामोश रही थी जैसे आसपास के जहान से उसे कुछ लेना-देना न हो। यह संकट समाप्त नही हुआ था और दिन हफ़्तों और हफ्ते महीनों' मे परिवर्तित होते गए थे। कौसर जहाँ के मन मे

जन्मा शक कि खुदा न करे बेटी कहीं गूँगी तो नही, यक़ीन मे बदलता गया था । डॉक्टरों से मशवरे और बड़ों-बुज़ुर्गों के तावीज़-गण्डे सब किए गए थे लेकिन अमीना ने किसी के सामने मुँह खोलने या उसकी उपस्थिति को महत्व देने के जतन विफल कर दिए थे । माँ-बाप आख़िरकार सब्र कर चुप हो रहे थे । कौसर जहाँ और नबीजबुल्लाह की दूसरी औलाद, बेटे सईददुल्लाह का जन्म तीन वर्ष बाद, सामान्य-साधारण ढंग से, रोते-हँसते हुए था, और धीरे-धीरे वह भी बड़ा होने लगा था । अमीना ख़ामोश, गम्भीर आँखों से सब कुछ देखती बड़ी हो रही थी । उससे जो कहा जाता था वह समझती और मानती थी । कौसर जहाँ ने उसे अक्षर पहचानना सिखाया था । और वह लिखना भी सीखती गई थी । जागते-सोते दाएँ हाथ का अँगूठा उसके मुँह मे दबा रहता था जिसे वह चूसती रहती थी । छोटे भाई की देखभाल का बड़ा ज़िम्मा भी बग़ैर किसी के कहे उसने अपने सिर ले लिया था ।"१९

मंज़ूर एहतेशाम जी ने इस रचना मे पारिवारिक सद्भावना को एक नई दिशा प्रदान की है जिसमें एक बड़ा भाई अपने छोटे भाई की देखभाल करने की जिम्मेदारी लेता हुआ प्रतीत होता है एवं उसका उसके छोटे भाई के प्रति सद्भाव दिखलाई पड़ता है।

-: पहर ढलते मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना :-

" भैया ने उस स्कूल से जहां को-एज्यूकेशन थी, उसका नाम कटवा कर लड़कियों के स्कूल मे डलवाना चाहा था, लेकिन यहाँ अब्बा अड गए थे और ऐसा नही होने दिया था.... बिया पूरी कोशिश करके भी उन्हें अपनी बात पर राजी नही कर पाई थी.... दीया को यकीन था कि उसकी शादी किसी बाहैसियत घर आने मे तो क्या किसी औसत शरीफ घर के लड़के से भी नही हो सकती।...... खुद उसके दिल मे लड़कों को लेकर एक तरह की नफरत और खौफ पैदा होता गया था। छोटी बहनें बहुत जल्दी के साथ लड़कों मे उठती-बैठती, उनके साथ फिल्मे देखने और घूमने जाते.... खुद अब्बा और बिया देर-देर तक उनके दोस्तों से बातें किया करते... यूथ- फेस्टिवल मे उसकी बहनें अकेली शहर के बाहर भी गई थी।" २० "शबनम सीधी उनकी तरफ गई थी। -हामीदा आपा-अल्ताफ़ आई! यह बिल्कुल नही चलेगा। आप लोग हमेंशा यही करते हैं । एक तो बुला -बुला कर थक जाओ, आते नही, आएंगे तो हमेंशा जल्दी मे ।"२१

इन पुष्टि तथ्यों मे एहतेशाम जी ने पारिवारिक सद्भावना को दर्शाया है तथा यहाँ लेखक ने परिवार मे सदस्यों के बीच होती नाराज़गी को दर्शाया है। जो कि परिवार मे प्राय: देखने को मिल ही जाता है।

-: मदरसा मे व्याप्त पारिवारिक सद्भावना :-

" बातचीत मे वह किसी मुद्दे की तफ़सील मे जाना चाहता भी तो मरियम अपनी ज़िद्दी चुप साध लेती जिसके आगे हर हथियार ओछा साबित होता और जिसकी महिमा वह अभी तक मरियम के साथ बिताए उम्र के हिस्से मे बरहा देख चुका था। ऐसा चाहे, एक ज़माने मे, मरियम के अपने परिवारवालों के लिए रहा हो, कभी साबिर से नाराज़गी के कारण या फिर कुछ ऐसे लोगों के लिए जिनके प्रति उसके मन मे मैल आ गया हो । "२२

" उसमे सफ़ल नही हो पाया था और नुक़सान उठाना पड़ा था । लोगों के रहने की चाल, जो उसने इस उद्देश्य से बनवाई थी, कॉर्पोरेशनवालों ने बसने से पहले ही तोड़ डाली थी। उसके नफ़े-नुक़सान को सोचे बग़ैर उस समय अब्बा से कहीं ज़्यादा वह अम्मा के सदमे का कारण बना था, हालाँकि तब उन्होंने उससे सीधे-सीधे कोई जवाब तलब नही किया था । बस, उनके और अन्य घरवालों के व्यवहार मे एक साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकनेवाला परिवर्तन आ गया था ।" २३

"उस पर लेन-देन मे गड़बड़ और चाल बनाने के असफल प्रयास के अलावा अम्मा की ओर से जो अन्य आरोप थे उनमे बम्बई मे अब्बा की पहली शादी से जो औलादें थीं, जिनका अम्मा के प्रति हमेंशा दुश्मनी का रवैया रहा था, उनसे दोस्ती के सम्बन्ध बनाना, और अम्मा की पहली ससुराल अर्थात् ख़ुद उसकी ददियाल जिसे वह सिरे से भूल चुकी थीं और भूले रहना ही चाहती थीं, खोजकर उन लोगों, अर्थात् उसकी फूफियों और उनके परिवारों से दोबारा सम्बन्ध स्थापित करना था।"२४

" ख़ुद से कोई कहाँ तक क्यों झूठ बोलेगा! यह अन्दाज़ा उसे था कि अब्बा की सम्पत्ति मे क़ानूनी हिस्सेदार वह नही था । साथ ही, यह विश्वास भी था कि उसकी लगन, मेहनत और ईमानदारी का फल, उसे मिलेगा और अम्मा-अब्बा उसे नवाजेंगे ।"२५

" तो जब तुम छत से टंगे, बेंत के झूले मे झूलते, 'इस दश्त मे इक शहर था, वह क्या हुआ ? आवारगी' । के लिए, ग़ुलाम अली को दाद देते, अपनी मरियम के साथ की ज़िन्दगी जो कहानी बन चुकी है, दोहरा-दोहराकर, समझ सकने की कोशिश कर रहे हो, मरियम अपना सूखा-सा मुँह और चमकदार आँखें लिये, बिटिया समेत 'फैन्स क्लब' के हेडक्वार्टर्स पहुँच चुकी है, जहाँ जमा शुभचिन्तकों की भीड़, 'साबिर नईम मुर्दाबाद' । बिटिया की शादी, हो के रहेगी ।' तथा बिटिया-आरिफ़, अमर रहेंगे । अमर रहेंगे ।।' जैसे नारे (दिल-ही-दिल मे ।) लगा रहे हैं ।"२६

उपर्युक्त पंक्तियों से यह सिद्ध हो जाता है की साहित्यकार ने अपनी इस रचना मे पारिवारिक संवेदना को व्यक्त किया है तथा इन्होंने इस रचना मे परिवार मे रह रहे लोगों के बीच किस प्रकार का सौहार्द है वह दर्शाने का प्रयास किया है।

-: सामाजिक सद्भावना :-

भूमिका :- सामाजिक सद्भावना एक ऐसी सद्भावना है जो कि समाज मे रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति और परिवार एक-दूसरे के लिए रखता है । इस सद्भाव मे सामाजिक व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ - साथ समाज मे रहने वाले लोगों के प्रति अपनी सद्भाव वृत्ति रखता है जिससे उसके सामाजिक व्यवहार का पता चलता है और वह किस प्रकार का व्यक्ति है यह भी उसके व्यवहार मे परिलक्षित हो जाता है।

समाज मे कई प्रकार के लोग निवास करते हैं तथा समाज मे ऐसे कई लोग विद्यमान होते हैं जो एक - दूसरे के सुख - दुख मे साथ देते हैं और एक - दूसरे से मेल-मिलाप रखते हैं समाज मे रहने वाला लगभग प्रत्येक व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होता है एवं समाज प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। चाहे वो कोई खेल का मैदान हो या बच्चों के शिक्षा ग्रहण करने का स्थान । हर जगह पर यह सद्भाव विद्यमान होता है और यह भावना भी विद्यमान रहती है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे के लिए सद्भावना से परिपूर्ण हो कर ही कार्य करे।

जब एक बच्चा जन्म लेता है तो वह एक परिवार मे जन्म लेता है जहां उसे पारिवारिक सद्भाव प्राप्त होता है परन्तु जब उसका धीरे - धीरे शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है तो वह परिवार से एक समाज मे जाता है और वहाँ के लोगों से मिलता - जुलता है तथा अपने परिवार से अलग हट के नए लोगो के संग सद्भाव स्थापित करता है जिससे वहां सामाजिक सद्भावना पनपती है।

सामाजिक सद्भावना मे प्रत्येक व्यक्ति अपना सहयोग देता है तथा कई प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं जो इस सद्भावना को अपने नजरिए से व्यक्त करते हैं जिनमे से महात्मा गांधी जी ऐसे ही व्यक्ति माने जाते हैं जो हमेंशा अपने विरोधियों के खिलाफ हिंसा करने से बचते रहे हैं। यह अहिंसक कार्यकर्ता हमेंशा मारने के बजाय मरने को तैयार रहते थे। गांधी जी ने दमन और अन्याय के खिलाफ तीन संभावित प्रतिक्रियाओं को हम सबके सम्मुख रखा है। पहला वह कायरता का रास्ता बताते हैं जिसमें गलत चीज को बर्दाश्त कर लो और इससे दूर भाग जाओ। दूसरा विकल्प यह है कि वहां खड़े होकर बलपूर्वक लड़ो। लेकिन जो तीसरा रास्ता वह बताते हैं वो सबसे अच्छा है और इसमे सबसे ज्यादा हिम्मत की आवश्यकता होती है। वह यह बताते हैं कि सामनेवाले से अकेले अहिंसात्मक तरीके से लड़ो।

महात्मा गांधी जी के सम्पूर्ण जीवन को देखा जाए तो इन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन मे अक्सर समाज मे सामाजिक सद्भावना को स्थापित करने का ही निरंतर प्रयास किया है। इन्होंने कहा था की, “मेरे सभी कार्यों का स्रोत मानव जाति का अविच्छेद्य प्यार है।” इससे यह प्रतीत होता है कि उनका समाज मे रहने वाले लोगों के प्रति कितना सौहार्द था तथा कितनी सद्भावना थी । जिसके कारण ये समाज के लोगों के लिए इतना विकासात्मक कार्य कर गए ।

सामाजिक सद्भावना को कथा - साहित्य की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है एवं कथा - साहित्य के अत्यधिक लेखकों ने अपनी रचनाओं मे इस सद्भावना को समाहित किया है। आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने सामाजिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे पारिवारिक सद्भावना को अपने साहित्यिक उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे सामाजिक सद्भावना जागृत हो उठती है ।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे सामाजिक सद्भावना :-

मंज़ूर एहतेशाम जी ने पारिवारिक सद्भाव के साथ-साथ सामाजिक सद्भावना को भी अपनी रचनाओं मे समाहित किया है । जिनकी पुष्टि निम्नलिखित उपन्यासों के आधार पर की जा सकती है जिसके उदहारण इस प्रकार हैं:-

- : कुछ दिन और मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना : -

" पहले ज़रा मार्केट का थोड़ा कर्ज़ा पट जाए, फिर तुम्हें दे देंगे । एक अच्छी बात है कि साला मान लेता है । कहने लगा— तुम कोई अलग हो ? कभी भी दे देना, दोस्ती.... "२७

" फिर टेप - रिकॉर्डर, कैमरा उनकी कीमती दूरबीन—सब धीरे - धीरे घर से जाते रहे थे । और घर मे जरूरत की चीज़े आती रही थीं । ' नारायण कुछ काम करने के मूड मे है, ' एक शाम राजू ने कहा था । 'मुझसे कह रहा था, तुम मेरे पार्टनर हो जाओ । तुम्हें कुछ लगाने की जरूरत नही । मेरे सिर तो वैसे भी बहुत - सी ज़िम्मेदारीयाँ हैं । यह काम तुम देखना और प्रॉफ़िट आधा-आधा ।' ' नारायण को आपसे इतनी हमदर्दी कैसे हो गई है ?'"२८

" 'रोशनी अन्दर जा रही है, ' उसने आराम से कहा । 'अभी जाग गया तो परेशान कर डालेगा ।' फिर वह कुर्सी पर वापस आकर बैठ गया था । ' पुरानी बिगड़ी हुई आदतें हैं, तुम तो जानती हो—ही इज एन ओवरग्रोन किड... '"२९

" तुमने क्या खिलाया था ? पन्द्रह तरह की डिशेज थीं, कुछ शराबें थीं, जिनके लिए हर आदमी, एवरी मेम्बर ऑफ़ द क्लब विल पे हिज इन्स्टालमेट एंड ऑलसो हिज गेस्ट । "३०

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपने उपन्यास 'कुछ दिन और' मे सामाजिक सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप मे संजोया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करते हैं तथा समाज मे रहने वाले लोगों के साथ आपसी प्रेम व्यवहार बनाए रखते हैं। इसके साथ-साथ सामाजिक तत्वों की प्रमाणिकता हमें कई स्थानों पर इनके इस उपन्यास मे देखने को मिल जाती है जिनकी पंक्तियाँ हम पहले ही निरूपित कर चुके हैं तथा सामाजिक सद्भावना की पुष्टि कर चुके हैं। इस आधार पर इनके इस उपन्यास से समाज मे रह रहे लोगों को यह ज्ञात होता है कि समाज मे लोगों के संग किस तरह से व्यवहार करना चाहिए तथा किस तरह से एक दूसरे के काम आना चाहिए।

-: सूखा बरगद मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना :-

" मजे की बात यह थी कि हब्बा बुआ के घर मे जो दो कोठरियाँ थीं उनमे से एक मे तो हब्बा बुआ खुद, उनके पति और बच्चे रहते थे और दूसरी मे शप्पा आपा और उनके पति। बीच मे सात- आठ फीट का दलान था और पूरे घर मे बाहरी टीन के दरवाजे के अलावा, किसी भी खिड़की या दरवाजे मे पट नही जड़े थे । एक तरफ माँँ और बाप ? दूसरी तरफ बेटी और दामाद ?"३१

" उस उम्र मे यह अंदाज लगा पाना कि हम लोग किस भूगोल अथवा माहौल का कौन - सा हिस्सा हैं, संभव नही था। मुझे लगता, अब्बू के होते हमारे वास्ते दुनिया की कोई भी चीज़ जुटाई जा सकती है । यह बात और है कि उस समय की कल्पना की दुनिया और आज मे बड़ा अंतर है। तब मुहल्ले के अलावा शहर फसीलों, दरवाजों और तालाबों का एक सिलसिला था जिसमें किन्हीं मुहल्ले मे हमारे रिश्तेदार रहते थे, कहीं अब्बू - अम्मी के दोस्त या जान - पहचानवले। हम आर्थिक रूप से किस वर्ग - विशेष से संबंधित हैं, अब्बू की आमदनी कितनी है, मजहब के नाम पर हमारा मुसलमान होना क्या अर्थ रखता है, सोच पाना संभव नही था। बस इतना मालूम था कि शहर मे मुसलमानों के अलावा हिन्दू भी रहते हैं, जो कलमा नही पढ़ते, मस्जिद मे नही आते, बकौल फफू के " काफ़िर हैं, बुत पुजते है, इसलिए मरने के बाद जहन्नुम मे जाएंगे।" शहर मे कुछ मुसलमान और हिंदू हमसे बहुत अच्छे और खूबसूरत मकानों मे रहते थे, उनके पास मोटर थी, और बहुत अच्छे कपड़े पहनते थे । कुछ हम जैसे थे। और कुछ लोग छोटी-छोटी कोठरियों या तंग मकानों मे रह कर गुजर-बसर करते थे ।"३२

" साहनी साहब मुझे एक उर्दू शायरी की किताब दिखा रहे थे, जिसे बरसों पहले सुहेल ने उन्हें भेंट किया था और मैं यह सोच- सोचकर उलझ रही थी कि किस चीज की तारीफ करूं - उनके दिल मे उर्दू शायरी के लिए प्रेम की या सुहेल का तोहफा इतने साल तक संभाल के रखने की ।"३३

" आप मुझे नही पहचानी।" मेरे झुंझलाकर कोई जवाब देने से पहले ही उसने जल्दी से कहा था - " वकील साब के पास हमारे अब्बा का रोज़ आना जाना था, और वही मुहल्ले मे गली मे हम रहते थे। सुहेल मियाँँ मेरे साथ खेले हैं, वह जानते हैं मुझे। फखरुद्दीन मेरा नाम है। "३४

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचना 'सूखा बरगद' मे सामाजिक सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप प्रदान किया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करते हैं तथा समाज मे रहने वाले लोगों के साथ एक आपसी प्रेम व्यवहार बनाए रखते हैं। इसके साथ-साथ हमें इनकी रचना मे सामाजिक

तत्वों की प्रमाणिकता देखने को मिल जाती है जिनकी पंक्तियाँ हम पहले ही दर्शा चुके हैं तथा उनसे हम सामाजिक सद्भावना की पुष्टि कर चुके हैं। इस आधार पर इनकी इस रचना से समाज मे रह रहे लोगों को यह ज्ञात होता है कि समाज मे लोगों के संग किस तरह से मेल मिलाप रखना चाहिए तथा किस तरह से एक दूसरे के काम आना चाहिए और हमेंशा आपसी प्रेम-सद्भाव बनाए रखना चाहिए।

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना :-

" सब ज़मीर एहमद ख़ान ने बड़ी अपनाइयत के साथ दिया था, बग़ैर एक बार भी यह तक़ाज़ा किए कि क़ानूनी तौर पर दुकान के काग़ज़ात मे मेरा नाम भी एक पार्टनर की तरह शामिल होना चाहिए । इसके अलावा बिना आमदनी और ख़र्चे के हिसाब को बताए शराफ़त मियाँ पिछले नौ साल से हर माह जो कुछ उसकी हथेली पर रखते थे, वह उसे ख़ंदापेशानी क़बूल करता रहा था । हथेली पर धरा यह वज़न पाँच सौ रुपए से शुरू हुआ था और बढ़कर आठ सौ पर जाकर थम गया था ।"३५

" यथास्थिति बनाए रखने, अर्थात् उतरनेवालों को उतरने और चढ़ानेवालों को चढ़ने से रोकने के लिए प्रतिद्वंदी अपना सबकुछ दाँव पर लगा देंगे। यह जानते -बूझते कि इसमे किसी और का नही खुद उनका अपना घाटा है। यह मिज़ाज बन चुका है सारे मुल्क का ।लोग बेकार आपस मे भेद ढूँढ -ढूँढकर लड़ने-मारने मे वक्त़ गँवाते हैं, धर्म-क्षेत्र और जाति के बहाने जो बेहद सतही और सरसरी है, उन तथ्यों के आगे जो सबमे समान हैं और देश को देश और क़ौम को क़ौम का रुतबा देते हैं। यह समानता देश के किसी भी रेलवे स्टेशन पर आकर रुकी रेलगाड़ी पर टूटते साधारण जनमानस की यलग़ार मे देखी जा सकती है। लोग थे और सामान, गाड़ी के इंतज़ार मे धड़कते और बेचैन ।"३६

" अरे, सुनो यार ।" बात का संचालन कर रहे सज्जन ने 'ऑर्डर । ऑर्डर ।' के स्वर मे कहा था, " यही तो दिक़्क़त है कि जब कोई ठोस बात करनेवाला होता है तो सुननेवाले नही मिलते।" " हम सब," एक अन्य सज्जन ने शराब का लंबा घूँट लेकर गिलास जोर से फ़र्श पर रखते हुए कहा था, "इनकी बात सुनने को बेक़रार हैं।" " क्या मतलब ।" संचालक ने अगले के स्वर की तरंग को समझते हुए एतराज़ किया था, "साहब, इनका दाख़िला कल से बंद ।" उसने साहिबे - ' गुफ़ा ' अर्थात् मकान-मालिक को आदेश दिया था, " यह दो घूँट मे बिल्कुल मशक का बाजा हो जाते हैं।"३७

" या फिर दर्दनाक इश्क़िया कहानियों के प्लाट, एक-से-एक विभिन्न सिचुएशन वाले, जिन्हें वह लिखना तो बहुत चाहता था मगर पढ़ाई और परीक्षा की चिंता मे नही लिख पाता था। आईशा ... आईशा ... आईशा ... जहाँ-जहाँ भी संभव हो सकता था उसने इस नाम को अपने हाथ से लिखा था

-नोटबुकों के पीछे, अलग-अलग विषय की किताबों मे ऐसी जगह छिपाकर जहाँ हर कोई न देख पाए, क्लास मे अपनी डेस्क पर, लेबॉरेट्री की टेबिल पर, अपनी विभिन्न डायरियों मे, दीवारों और सड़क के किनारे लगे बिजली के खंबों पर और फिर आख़िरकार एक नोकदार चाकू से घर के पास अजायबघर के कंपाउंड मे लगे उस बड़ी छतरीवाले गुलमोहर के तने पर जो आज से कुछ साल पहले तक अपनी जगह मौजूद था।"३८

" क्यों नही । दिल मे ज़रूर एक उम्मीद की किरन जागी थी कि शायद यह कॉपी-किताबों का आदान-प्रदान ही मामले की सही शुरुआत बन सके और आईशा जब उसकी कॉपी लौटाए तो उसमे रखा उसका प्रेम-पात्र भी हो। ऐसा नही हुआ तो भी उसके इश्क़ पर इन मामूली बातों से भला क्या अंतर पड़नेवाला था । उसकी उम्मीद जो यक़ीन से ज्यादा पुख्ता थी क़ायम रही । हाँ, अब अपनी इस हालत को उसके लिए विवेक से भी छिपा पाना संभव नही था। विवेक वैसे भी लड़कियों मे ज्यादा लोकप्रिय था और कभी-कभी ज़मीर एहमद खा़न को डर लगता था कि कहीं आईशा का झुकाव भी उसी की ओर न हो। एक दिन विवेक को अपना हमराज़ बनाते हुए उसने अपना हाले-दिल कह सुनाया था । "छुपे रुस्तम हो साले ।" विवेक ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा था। "सचमुच दमदार लड़की है आईशा । तुम्हारी तरफ़ से मैं उससे बात करूँ ? वह भी मुसलमान तुम भी मुसलमान, हम तो वैसे भी तमाशाई हैं ।"३९

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचना 'दास्तान-ए-लापता' मे सामाजिक मूल्यों को बहुत ही सुंदरतम् रूप प्रदान किया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करते हैं तथा समाज मे रहने वाले लोगों के साथ एक आपसी प्रेम व्यवहार बनाए रखते हैं। इस उपन्यास का पात्र सामाजिक सद्भाव को अपनी जीवन शैली मे उतारता हुआ प्रतीत होता है । इस आधार पर इनकी इस रचना से समाज मे रह रहे लोगों को यह ज्ञात होता है कि समाज मे लोगों के संग किस तरह से मेल मिलाप रखना चाहिए तथा किस तरह से एक दूसरे के काम आना चाहिए। जिससे हमारे जीवन यापन मे कोई रुकावट ना हो ।

-: बशारत मंज़िल मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना :-

" वह सीधे क़िले मे गए और वहाँ से एक सुराही पानी लेकर चले । घर के पास पहुँचे तो देखा सलामत बुढ़िया सड़क पर बैठी है और उसके हाथ मे मिट्टी की सुराही और आबख़ोरा है...सैयद अहमद ने उसके आबख़ोरे मे पानी दिया और कहा कि पी ले...उसने कँपकँपाते हाथों से आबख़ोरे पानी अपनी सुराही मे डाला, कुछ गिरा दिया और घर की तरफ़ इशारा करके कुछ कहा । मतलब यह था कि वहाँ लोग प्यासे हैं, उनके लिए पानी ले जाऊँगी । सैयद अहमद ने कहा मेरे पास पानी बहुत है, तू पानी पी ले । फिर आबख़ोरे मे पानी दिया और वह पानी पीकर लेट गई । वह दौड़े हुए घर की तरफ़ आए और हमको पानी पीने को दिया...हमने खुदा का शुक्र अदा किया । वह घर से बाहर निकले कि सवारी का बन्दोबस्त करें और हम लोगों को अपने साथ मेरठ ले जाएँ । बाहर आकर क्या देखते हैं कि सलामत मरी पड़ी है...फिर सारे शहर मे बावजूद यह कि हुक्काम ने अहकाम भी जारी किए, कहीं सवारी नही मिली ।"४०

" मौलवी साहब को मुसलमानों के शिक्षा, नौकरी और धन्धे-हर चीज़ मे पिछड़ने का एहसास और ग़म था । वह खुद सख़्त मेहनत के बाद ज़िन्दगी मे कुछ बन पाए थे इसलिए मेहनती लोगों की दिल से क़द्र करते थे और जिस प्रकार हो सके, उनकी सहायता करने की कोशिश भी करते थे । इसमे उन्होंने लम्बे आर्थिक नुक़सान भी उठाए थे तो भी कुछ कर सकनेवालों की सहायता करने का उनका उत्साह ठण्डा नही हुआ था । उनकी याद्दाश्त बहुत अच्छी थी और मुद्दतों पहले पढ़ी किताबें उन्हें सफ़हा-दर-सफ़हा ज़बानी याद थीं । मज़हब को समझने और उसकी व्याख्या करने का उनका अपना एक दृष्टिकोण था ।"४१

" —ऐसा अगर है तो, मैंने ईमानदारी से कहा था—खुद मैंने उसे इस तरह नही सोचा । मुझे लगा वह तफ़सील मेरे बयान के बहाव मे अड़चन बनेगी । मुझे जो कुछ करना है, इस तरह वह पढ़नेवाले तक सीधा-साधा पहुँचेगा । हो सकता है, बदलते ज़मानों की तस्वीरकशी के मामले मे यह किताब रिसर्च-स्कॉलर्स की ज़्यादा मदद न कर पाए । सिर्फ़ ज़मानों का बदलाव और उसके साथ बदलता आदमी इस किताब की थीम है भी नही । हो सकता है, कुछ लोग यह जानकर मायूस हों— क्या किया जा सकता है । यह किताब किसी को खुश करने या तकलीफ़ पहुँचाने की मंशा से तो लिखी नही जा रही । या ऐसा है तो हर एक को थोड़ा खुश करने और थोड़ा-सा उसका दिल दुखाने को, शायद ।"४२

" गुड्डू की मौत की ख़बर सुनकर संजीदा को आश्चर्य भी हुआ था और सदमा भी, लेकिन इस बारे मे वह किसी के ख़त न लिखने या गुड्डू की मौत की इत्तिला न देने का शिकवा नही कर सकते थे । जो भी हो, गुड्डू बिल-आख़िर घर का एक नौकर ही था जो आठ साल की उम्र मे, लावारिस, जमाल बेग की हवेली पर आया था, जिसे जहाँआरा बेगम ने अपनी व्यक्तिगत सेवा के लिए नौकर रख लिया था । वह उसका ख़ास ख़्याल करती थीं और समय-समय पर उसे तरह-तरह के इनाम-इकराम से नवाज़ती रहती थीं । वह उनका ऐसा मुँह-चढ़ा ख़ादिम था जिसकी बेगम से निकटता देखकर हवेली के बाक़ी नौकर ही जलते और हसद नही करते थे बल्कि समय के साथ-साथ, उसके लिए बन्दा अली ख़ान की नापसन्दीदगी भी बढ़ती गई थी ।"४३

" जो असलियत थी, संजीदा को बड़ी हद तक उसका अन्दाज़ा था और उसे समझकर वह स्वीकार भी कर चुके थे । हुआ यही था कि अपने अकेलेपन के साझे के लिए जहाँआरा की छोटी उम्र का गुड्डू एक अच्छा साथी लगा था । वह उनका दोस्त था, उनका कहा करता था और कभी-कभी अपनी ज़िद पर भी अड़ जाता था । इन सम्बन्धों की आत्मीयता की अन्तिम सीमा क्या रही होगी, यह सोचा जा सकता है लेकिन यक़ीन के साथ ही कह सकने का कोई प्रमाण हमारे पास नही है । एक बूढ़ी औरत और जवान होते लड़के के बीच सम्बन्ध अनेक संकटों की शंका दिमाग़ मे जगाते हैं, और इस स्थिति मे अगर कुछ ऐसा हो जाए जो समाज को अमान्य हो तो अजब नही । ऐसा कुछ भी न हो लेकिन आसपास की दुनिया शक की दृष्टि से देखने लगे, यह तो शायद स्वभाविक है ही ।"४४

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचना 'बशारत मंज़िल' मे सामाजिक मूल्यों को बहुत ही सुंदरतम् रूप प्रदान किया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करते हैं तथा समाज मे रहने वाले लोगों के साथ एक आपसी प्रेम व्यवहार बनाए रखते हैं। इस उपन्यास का पात्र सामाजिक सद्भाव को अपनी जीवन-शैली मे उतारता हुआ प्रतीत होता है । इस आधार पर इनकी इस रचना से समाज मे रह रहे लोगों को यह अनुभव होता है कि समाज मे लोगों के संग किस तरह से मेल मिलाप रखना चाहिए तथा किस तरह से एक दूसरे के काम आना चाहिए। जिससे हमारे जीवन यापन मे कोई रुकावट ना हो और छोटी - मोटी समस्याओं का समाधान आसानी से निकाला जा सके।

-: पहर ढलते मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना :-

" -आई एम सॉरी । जफर बेग ने अपने अंदाज मे तेज - तेज बोलते हुए कहा था। - चीफ मिनिस्टर से मीटिंग थी। शाम छह से वहीं रात के नौ बज गए । जफर बेग की नजर कॉरीडोर के दूसरे सिरे पर कोठी के अंदर, कदम बढ़ाते अल्ताफ पर पड़ी थी। - हैलो अलताफ । उसने हाथ हिलाते हुए ऊंची आवाज मे कहा था - हमीदा कैसी है ? और अल्ताफ के जवाब का इंतजार किए बगैर हनीफ मियां के साथ वह बैठक के कमरे मे दाखिल हो गया था।"४५

" फिर जैसे ही थोड़ी उम्र ढली, शादी और एक दो -बच्चे हुए, तो बेगम अख्तर या मेहंदी हसन या रूना लैला । पिछले दिनों मुंबई मे उसने एक ' सो - कॉल्ड ' रूना लैला नाइट देखी थी । तालुक देखने से ही था, सुनने को वहाँ कुछ था भी नही । मुजरे बंद, कैबरे बन्द, लेकिन आर्टिस्ट को बन्द करके थोड़ी रखा जा सकता है । किसी ना किसी तरह वह अपने लिए गुंजाइश निकाल ही लेता है । और उस हिसाब से उसे रूणा लैला मे खासा दम नजर आया था।"४६

" फिर स्कूल मे धीरे-धीरे मैं जावेद के करीब आने लगी थी। जावेद से अब्बा के तरफ दूर की रिश्तेदारी भी थी और उन दिनों वे दोनों, साथ हायर - सेकेंडरी मे थे। अपने जिस्म पर किसी दूसरे के हाथों का एहसास आज भी याद करके जिस्म मे फुरफुरी दौड़ जाती है । स्कूल के अकेले कोने - कोचरों मैं मैं जावेद का इंतजार करती और कुछ पल के लिए दिमाग बिया , अब्बा और सारे तौबा करते, मुँह पीटते चेहरों को भूल जाता। जावेद के हाथ दो ऐसे तार थे जिनसे उसमे पैदा हुआ करंट उसके वजूद के बाहर निकल जाता था और वह हल्का महसूस करने लगती थी उस दिन जब उनकी क्लास शहर के बाहर पिकनिक पर गई थी.... कहीं झोपड़ियों मे उसे जावेद ने पकड़ लिया था... कुछ देर तक सब बहुत अच्छा लगा था...। नही जावेद । जब जावेद ने हद से बढ़ने की कोशिश की थी तो उसने उसे डांट कर अलग कर दिया था शाम जब वह घर लौटी तो उसे बहुत इत्मीनान था ।वह अपनी हिफाजत करने मे कामयाब रही थी..... " ४७

" कैप्टन मुजीब के रोने से सारी महफिल गहरी संजीदगी मे डूब गई थी। नवाब साहब, बेगम साहिबा, जफर बेग, जमीला और उसके खानदान वाले, हद तो यह कि पास-पड़ोस के वह लड़के जो धीरे-धीरे महफिल मे आकर शरीक हो गए थे, अपनी - अपनी जगह बहुत अदब से बैठ गए थे। उनमे से ज्यादा को शहाब जानता था। अच्छे खानदानों के लड़के जिनका दिल पढ़ाई मे कम लगता था और शौक और एडवेंचर के लिए लोगों की कारों का पेट्रोल और स्टेपनियाँ चुराने मे ज़्यादा। अभी सबके खानदान खुशहाल थे। हर एक की अपनी मोटरसाइकिल, घर से अच्छा - सा जेब खर्च मिलता था जिसकी वजह से बहुत सारे ऐसे लोग भी उनके आसपास जमा रहते थे जो बुनियादी तौर पर क्रिमिनल मिजाज के थे।" ४८

" या तो वह जरूरत से ज्यादा गर्मजोशी से काम लेता था या फिर उतने ही गैरजरूरी ठंडेपन से, जो दोनों ही उल्टा असर करते थे। बीच का रास्ता अपनाना एक नपे -तुले अंदाज मे काम को तवज्जो देना, बेकार बातें कारामद मे मिलाकर करना, किसी मामूली चीज को भी सामने वाले का रुख और मिजाज़ समझते हुए बढ़ा चढ़ाकर ज़रूरी बनाना, खुद को मजबूर कर -करके हँसना - वह जानता था यह सब करना धंधे मे निहायत जरूरी था। ऐसा भी नही कि वह यह सब बिल्कुल करता ही ना हो, करीब के लोगों और दोस्तों के बीच वह यह सब कुछ करता था। क्योंकि लगता था आपसी तालुकात कायम रखने के लिए यह सभी जरूरी है ।"४९

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचना 'पहर ढलते' मे सामाजिक मूल्यों को बहुत ही सुंदर रूप मे प्रस्तुत किया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं तथा समाज मे रहने वाले लोगों के साथ एक आपसी प्रेम - संबंध बनाए रखते हैं। इस उपन्यास का पात्र सामाजिक सद्भाव को अपनी जीवन शैली मे उतारता हुआ रचना को गति प्रदान करता है। इस आधार पर इनकी इस रचना से समाज मे रह रहे लोगों को यह शिक्षा मिलती है कि समाज मे लोगों के संग एक सद्भाव बनाए रखना चाहिए।

- : मदरसा मे व्याप्त सामाजिक सद्भावना :-

"यह थी आपसी भरोसे के ख़ात्मे की शुरुआत । आगे यह कुछ और भद्दी हो गई थी, क्योंकि अपने खोए हुए हक़ की पूर्ति की मंशा से उसने सचमुच कुछ ज़मीन ग़ैर-क़ानूनी तौर पर बेचना चाही थी ।"५०

"उसके होंठों से 'ऑटोमेटिक वॉल-क्लॉक' प्रसंग सुनते ही संजय ने किसी दार्शनिक की मुद्रा-भंगिमा धारण करते सहानुभूतिपूर्वक कहा था—मैं समझ गया सब । यह क्लॉक की ट्रेजडी, तुमने मुझको बोला— तुम्हारे मामा का, ख़ाला का, इधर बड़े घर का भी (बड़ा घर, अर्थात् अम्मा-अब्बा का घर ।)लाइफ़, नाम ही, साबिर भाई उस रंडी का है, जो दिखाती अंग-अंग है, पैसा वसूलती है । हाथ वहाँ नही धरने देती, जहाँ तुम चाहते हो । बाक़ी सब बिछा देती है, तुम लेटो-बैठो उस पर । धमाल मचाओ रातें बिताओ, गोट जमाओ, मेला लगाओ । भुतनी की ।"५१

"इस बीच, बीवी और बेटी के अलावा भी तो, बहुत कुछ गड़बड़ हुआ था, जिसमें टेकरी का टंटा भी शामिल था, और उन लोगों के तक़ाज़े भी, जिन्होंने पुराने सम्बन्ध पर भरोसा करके, उसे अपनी टी.वी. स्टेंड कम्पनी का एजेंट घोषित करके, माल सप्लाई किया था : उसे यह मुहलत भी न मिल सकी कि दूकानदारों से तक़ाज़ा-वसूली करता । कौन मारा-मारा फिरता, शहर-शहर, दर-ब-दर । उधर बादबान साहब, यह कहकर पैसा लौटाने से नट गए थे, कि वह उसी को लौटाएँगे जिससे पैसा लिया था, यानी मरियम ।"५२

" दर्शन को रुख़्सत करने के बाद, उसे शाबाशी देती नज़रों से देखते, उन्होंने कहा था— माशाअल्लाह, तुम बड़े हो गए । बहरहाल, एहतियात ज़रूरी है । अजनबियों मे क्यों इतना घुलो-मिलो, कि ग़लतफ़हमी की नौबत आए । अच्छी लड़की है पिंकी, हमें ख़ुद पसंद है । दर्शन, सुषमा या उनके दिल्लीवाले भाई भी बुरे नही । तुम्हारे अब्बा दिल्लीवाले भाई को ख़ुशख़बरी दे चुके हैं, कि अल्लाह मियाँ ने जन्नत मे नेक ग़ैर- मुस्लिमों का कोटा भी रखा है । ऐसे लोग जो नाम नही किरदार के मुसलमान हों । यानी वह फ़िक्र न करें । उनकी मुहब्बत का अन्दाज़ तुम जानते हो, लेकिन लोग अलग-अलग बनाए गए हैं । इसमे ख़ुद उनका कोई हाथ नही । दुनियादारी हो या दीनदारी, अपने-अपने क़ानून के बिना मुमकिन नही । इश्क़ भी ऐसा हो जो परवान चढ़ सके, यह लैला-मजनू, शीरीं-फ़रहाद के ज़माने नही ।"५३

"भाई ने ज़ोर देकर कहा था कि पिंकी को घर मे छिपाना पड़ोसियों से दुश्मनी मोल लेना होगा । माँ ने तफ़सील जाननी चाही थी, और पिंकी ने सिर्फ़ इतना कहा था कि घरवाले उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी करना चाहते थे, और वह अपनी नानी के पास, जालंधर जाना चाहती थी । उसकी बात सुनकर वह लोग दुविधा मे पड़ गए थे, और अन्ततः उन्होंने पिंकी की सहायता करने का तय किया था ।"५४

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचना 'मदरसा' मे सामाजिक सद्भावना के मूल्यों को बहुत ही आकर्षक रूप मे प्रस्तुत किया है जिसमें इनके द्वारा पात्र समाज मे रहते हुए अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं जो कि 'मदरसा' बनवाने तथा उसके लिए कई सारे लोगों के साथ एकजुट होकर कार्य करने के सद्भाव को दर्शाया है तथा सामाजिक सद्भावना को इन्होंने इस प्रकार दर्शाया है कि चाहे वो दिल्ली वाले भाई के द्वारा दी गई खुशी हो या वकील साहब के संग दोस्ताना अंदाज़।

-: धार्मिक सद्भावना :-

भूमिका :- धार्मिक सद्भावना एक ऐसी सद्भावना है जो प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म के प्रति रखता है तथा उसके प्रती अपनी कर्तव्य निष्ठा को बनाए रखकर उसके प्रती समर्पित रहता है । वो चाहे हिन्दू हो मुस्लिम हो सिक्ख हो या ईसाई हर धर्म अपने - आपमे सर्वोपरी माना जाता है और प्रत्येक धर्म का व्यक्ति अपने धर्म के प्रति सद्भाव भी रखता है ।

जब कोई बच्चा किसी परिवार मे जन्म लेता है तो उसके परिवार के सदस्य अपने धर्म की शिक्षा दिन प्रतिदिन उस बच्चे को देते रहते हैं । जिसके कारण उस बच्चे के मन मे एक धर्म के प्रती भावना स्थापित हो सके तथा वह अपने जीवन काल मे उसी धर्म के प्रति अपनी सद्भावना रखे और उसके नियमों का पालन करे ।

समाज मे देखा जाए तो धार्मिक समुदायों को धार्मिक सद्भावना की आवश्यकता हमेंशा से रही है । मौजूदा दौर मे तो ये जरूरत बढ़ती ही चली जा रही है और इस हालात मे देश की मजबूती बढ़ाने का ये सबसे असरदार उपाय है की धार्मिक सद्भावना मे वृद्धि की जाए । प्रत्येक व्यक्ति समाज मे शांति व्यवस्था चाहता है । कई धार्मिक सम्प्रदायों के लोग धर्मांधता पर आक्रोश उत्पन्न करते हैं तथा लोगों को इसकी हानि होती है और दिन - प्रतिदिन तनाव बढ़ते चले जाते हैं ।

समाज मे धार्मिक सद्भावना को स्थापित होते हुए देख कुछ साम्प्रदायिक समुदाय ऐसे हैं जो समाज मे धर्मों के बीच द्वेष उत्पन्न करते हैं और जिसकी वजह से ये सम्प्रदाय चालाकी से दो धर्मों के बीच संदेह उत्पन्न करवाते हैं तथा इसका प्रचार - प्रसार भी ये बहुत चालाकी से करते हैं । इसकी वजह से समाज मे धर्म को लेकर झगड़े फसाद होते हैं और धार्मिक सद्भावना कम होती चली जाती है ।

धर्म एक ऐसा समुदाय है जिसमें केवल अपने ही धर्म के प्रति सद्भाव रहता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने ही धर्म को सर्वोपरी रखता है तथा उसका विकास करता है और उसी धर्म के प्रति अपने विचारों को समाज मे व्यक्त करता है । जिससे समाज मे सभी लोग उस धर्म के प्रति अकृष्ट हों ।

धर्म के प्रती लगाव रखना ठीक है परन्तु सभी धर्मों को बराबर का सम्मान भी दिया जाना चाहिए एवं सभी धर्मों को हमें सद्भावना की दृष्टि से देखना चाहिए । यह देखा जाए तो प्रत्येक धर्म मे सद्भावना देखने को मिल जाती है वो चाहे हिन्दू धर्म हो, मुस्लिम हो, सिक्ख हो या ईसाई । आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने धार्मिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे धार्मिक सद्भावना को अपनी औपन्यासिक रचनाओं मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे धार्मिक सद्भावना जागृत हो उठती है । जिसके पुष्टि तथ्य इस प्रकार हैं ।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे धार्मिक सद्भावना :-

मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचनाओं मे सामाजिक, पारिवारिक सद्भावना के साथ - साथ धार्मिक सद्भावना को भी स्थान प्रदान किया है जिससे इनके उपन्यास और भी कारगर सिद्ध हुए हैं । कुछ पुष्टि तथ्य हैं जिनके द्वारा हम धार्मिक सद्भाव को स्पष्ट कर रहें हैं :-

- : कुछ दिन और मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना : -

" मार्केट से मन्दिर तक हम लोग पैदल आए । अंशुल ने भी थोड़ा रास्ता पैदल तय किया । वह राजू की उँगली पकड़े-पकड़े चल रहा था । 'बेटा, मन्दिर मे भगवान रहते हैं... बेटा भगवान से मिलेगा... बेटा, भगवान से कहना, हमारे डैडी पर कृपा करो—क्या कहेगा बेटा ? हमारे डैडी के सिर से मुसीबतों का पहाड़ टालो ।' राजू रास्तेभर अंशुल को समझाते रहे । ' कहते हैं, मासूम बच्चों की दुआ भगवान फ़ौरन क़बूल करते हैं, ' राजू ने भक्तिपूर्ण भाव से कहा था । उनकी आँखो मे बला की श्रद्धा, बला का भय आ जाता था, ऐसे मौक़ों पर । ' शायद अंशुल की ही सुन ले भगवान, ' उन्होंने फिर कहा था । उनकी आवाज़ मे थोड़ा–सा कम्पन था ।"५५

" इसी बीच मेरा सामनेवालों की लड़की जमीला से भी मिलना हुआ था । शादी से पहले भी हम दोनों के बीच दोस्ती थी और उम्र मे जमीला पप्पू से बड़ी थी । हमारे और जमीला के घरों मे बहुत आना - जाना था, बावजूद इसके कि वह परिवार मुसलमानों का था । जमीला बी.ए. के अन्तिम वर्ष मे थी और उसकी शादी अमेरिका मे डॉक्टर से तय थी ।"५६

" आई रियली लाइक्ड हर, पर हमेंशा दिमाग़ मे यही रहा है कि यह रिलेशन कभी-न-कभी टूटने हैं । भाई, लफड़े भी तो देखो—वह मुस्लिम हैं, मैं हिन्दू हूँ । उसके पास सारी दुनिया की क्वालिफिकेशंस हैं—पता नही, क्या-क्य कर रखा है उसने, हमने अभी तक हाई–स्कूल भी पास नही किया है। और उसकी शादी । लड़का चार्टर्ड एकाउंटेंट है वहाँ कैनेडा मे और सारी फेमिली—दे आर सो वेल प्लेस्ड ।'"५७

धार्मिक सद्भावना की पुष्टि करने हेतु मंज़ूर एहतेशाम की रचना कुछ दिन और की उपर्युक्त पंक्तियाँ पुष्टि तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की गई है जिनमे धर्म के प्रति सद्भाव को पात्रों के अंदर समाहित किया गया है जो की आज के समाज मे बहुत ही धार्मिक आस्था को लिए हुए हैं । इस आधार पर आज के युग के व्यक्ति जिस प्रकार से अपने धर्म के प्रति सद्भाव रखते हैं उसी प्रकार की भावना को एहतेशाम जी ने अपनी 'कुछ दिन और' रचना मे समाहित किया है।

-: सूखा बरगद मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना :-

" तो इस माहौल मे बात चली थी जहां पाल सार्त्र और बोरिस पास्तरनाक को लेकर और आस पास बैठे लोगों के लिए बात बेमतलब, केवल बहस महत्त्वपूर्ण रह गई थीं। बात फैलते - फैलते दॉस्तोविस्की, टॉलस्टॉइ, पर्लबक, और स्टाइनबेक को समेटती, कार्ल मार्क्स तक वास्ते पहुँचते - पहुँचते दोनों के बीच ठन गई।- " अरे पहले पढ़िए भी जरा । " परवेज़ ने उसी मखौल उड़ानेवाले अंदाज मे कहा था - मार्क्स को पूरी तरह पढ़ कर बात कीजिए। वह है दुनिया को निजात दिलाने वाला, सही मानो मे जमाने का आखिरी और सच्चा पैगंबर। उसने बताया है आने वाले वक्त का हाल क्या होगा और क्यों होगा - दलीलें देकर समझाया है। आप तो यूं ही मुंह उठाकर कुछ भी कह देते हैं।"५८

" तो इस तरह बोलो ना ।" अब्बू को नुक्ता मिल गया - " बात अगर मजहब, हलाल और हराम की ठहरी तो उसमे सुवर का गन्दा होना कहाँ से आता है ? यह कहो कि अगर मज़हब ने इजाजत दी होती तो जरूर खाते ? मना किया है, इसलिए नही खाते ? वैसे तुम्हारे असगर साहब ने गलत नही कहा है - वाकई एक बार कुछ दोस्तों से मेरी शर्त लग गई थी। होटल मे खाना था। सूअर का गोश्त भी उसमे शामिल था। मैंने दोस्तों से कहा कि मैं सूअर नही खाऊंगा लेकिन इसका मतलब यह नही कि मुझे उनके सूअर खाने पर ऐतराज है। एक साहब अड़ गए। कहने लगे- वाहित साहब, बातें तो बड़ी प्रोग्रेसिवों -सी करते हो, लेकिन दिल से अल्लाह का डर या दोजख का खटका अब तक नही गया । अरे मियां साफ-साफ क्यों नही कहते कि हलालों - हराम का मामला है ईमान खतरे मे पड़ जाएगा।"५९

" कौन हिंदू गाय खाता है ? और मुसलमान तो उन्हें सूअर खाने से नही रोकते, वह कौन होते हैं हमें गाय खाने से रोकने वाले । मामू ठीक कहते हैं । इस शहर को राजधानी बनाया ही इसलिए गया था कि यहाँ मुसलमानों का पत्ता साफ हो जाए । और असगर साहब क्या गलत कहते हैं ? सही है इसलिए शहर को राजधानी बनाया गया कि धीरे-धीरे मुसलमान गिनती मे कम हो जाए और हिंदू उनके सिर पर जूते बजाएं । इधर राजधानी बनी, उधर शहर का पहला हिंदू - मुस्लिम फसाद हुआ - ' पंडित नेहरू मुस्लिम भाई, अंदर - ही - अंदर महासभाई' - और उससे कहा जाता है हम सूअर खाएं । क्यों खाएं ? "६०

" मैंने बहुत अदब के साथ उन लोगों से यही पूछा कि अगर वकालत के बारे मे आपका यही नजरिया है तो फिर जिन्ना साहब इतने अच्छे कैसे हो गए ? आधे लोग तो सवाल सुनकर चुप हो गए और बाकी जो थे वह नाराज । अब उन बुजुर्गों को कौन समझाता कि झूठ की कमाई, इस्लाम मे ही नही दुनिया के हर मजहब मे हराम है । और मजहब को अगर छोड़ भी दिया जाए तो इंसानी

नजरिए से झूठ बुरा है, सच अच्छा है। इसको समझने के लिए आसमानी किताबों की मदद लेना जरूरी नही- इंसान का जमीर काफी है। लेकिन जहां जमीर को जुजदानो मैं लपेटकर रख दिया गया हो और रिवायतों को मजहब का नाम मिल गया हो वहाँ हिंदू या मुसलमान को इंसान बनाना, नामुमकिन ना सही, खासा मुश्किल जरूर है।" ६१

" अली हुसैन साहब को शहर के लोगों, खासकर मुसलमानों से शिकायत रहती थी कि बाहर से आनेवालों, या शायद मुसलमानों कहना ज्यादा सही होगा, को उनमे अपनाईयत नही मिलती। वैसे उनके बारे मे रेडियो स्टेशन के ज्यादातर मुसलमान भी तरह-तरह की बातें करते रहते थे। वह शिया है या सुन्नी, यह भी एक रहस्य था। कुछ लोग कसम खाकर कहने को तैयार थे कि वह शिया हैं, दूसरे थोड़ी उदारता से इतनी छूट देने तक राजी थे कि उनकी शादी शिया परिवार मे हुई है। यहाँ से उन उदार लोगों के बीच आपस मे एक दूसरा विवाद था। आधे कहते थे कि शादी के बाद वह खुद भी शिया हो गए, दूसरों का मत था कि बीवी को सुन्नी कर लिया। एक न समाप्त होने वाली बहस अली हुसैन साहब के पीठ -पीछे रेडियो स्टेशन गिनती- भर मुसलमान कर्मचारी के बीच चलती रहती।"६२

" परवेज अपनी बात बहुत आसानी के साथ एक सांसँ मे कह गए थे; लेकिन उनके जुमले सुनकर वहाँ जमा लोगों को साफ- सा सूँघ गया था। उनकी बात हमारी कल्पना से परे और बिल्कुल अविश्वसनीय थी। लाख कीड़े हो जिया मे, फौजी तानाशाह या जो जी चाहे कह लिया जाए, लेकिन बाहरहाल है तो वह मुसलमान। और मजहबी फरिज़ों - रोज़ा, नमाज़, ज़कात वगैरा का शक्ति से पाबंद मुसलमान। यह सोचने की एक ऐसा आदमी इस हद तक जालिम हो सकता है कि अपने बेकसूर सियासी प्रतिद्वंदी को मरवा डालें, शायद हम मे से किसी के लिए भी संभव नही था। लाख कत्लों - गारतगरी की मि सालों से भरा पड़ा हो मुसलमानों का इतिहास, अब दुनिया और हालात बदल चुके हैं- ज़िया उन शासकों जैसा नही हो सकता। और, आज लाख जेल मे हो, भुट्टो की लोकप्रियता से क्या कोई इनकार कर सकता है। ज़िया ऐसा कदम उठाए उससे पहले ही, मुझे लगता पाकिस्तान मे क्रांति आ जाएगी। फौज मे भी तो इंसान ही होते हैं। लाख आप उन्हें रेवड़ मे तब्दील कर दें, एक हद के बाद वह भी बगावत कर देंगे।"६३

इस उपन्यास मे एहतेशाम जी ने मुस्लिम धर्म की सद्भावना को दर्शाया है जिनके पुष्टि तथ्य ऊपर व्याख्यायित किए जा चुके हैं। इस रचना मे मुस्लिम समाज की परम्परा को दर्शाया गया है तथा धर्म के प्रति सद्भाव को इस प्रकार से व्याख्यायित किया गया है कि सच मे वे पात्र उस धार्मिक प्रवृति मे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हों। उपर्युक्त तथ्य इस सद्भाव की पुष्टि करते हैं।

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना :-

"अरे भई, इन बेचारों को क्यों परेशान करते हो । सलाम, दुआ, तालीम, तरबियत - इन सबसे इन्हें क्या लेना देना । यह तो बड़े होकर ढोर चराएँगे । क्यों ना वली साहब ? यह न हुआ तो कुछ थोड़ा - सा पढ़ने- गुनने के बाद किसी मस्जिद मे मुअज़्ज़िन लग जाएँगे । इनकी उम्र तो किसी मस्जिद के हुजरे मे कटनी है।"६४

" ' तबस्सुम आपा- जिन्नात वार्ता ' को यूँ संजीदगी से लेनेवालों का प्रयास यह होता था कि उनके मुँह से बेहोशी मे निकली उन बातों की व्याख्या बँगले के बँटवारे की समस्या को नज़र मे रखते हुए किस तरह की जाए । एक निर्धारित समय, लगभग घंटे- डेढ़ घंटे, फ़र्श पर लोट - पोट होते रहने के बाद, जिन्नात से विदाई के क्षण फूट - फूटकर रोने और चिल्लाने के बाद तबस्सुम आपा फिर से इनसानों के झुरमुट मे आँख खोल देतीं । होश मे आने पर उन्हें एक बड़े चाँदी के कटोरे मे किसी पीर साहब का दम किया पानी पिलाया जाता और उनके आसपास जमा हुए लोग लौटकर फिर अपनी- अपनी फौ़ज, अपने - अपने खे़मे मे चले जाते । यानी शीत- युद्ध फिर से आरंभ हो जाता ।"६५

" वैसे गुलेलों से गिरगिट भी मारे जाते और मारने के बाद उनकी दुम काटकर मुसलमान करने का सवाब भी कमाया जाता । बिना पूछे- ताछे मस्जिद मे सिपारा पढ़ानेवाले हाफ़िज़ साहब और कुछ अन्य बुजुर्गनुमा बूढों का कहा मान लिया गया था कि गिरगिट क्योंकि रंग बदलता है, इसलिए काफ़िर है उसे मारने के बाद दुम काटकर मुसलमान करने का बहुत सवाब मिलता है । नफ़रतों के खेल को समझने मे सामर्थ्य के बिना, यह सवाब कमाने का बहुत आसान तरीक़ा था ।"६६

" दुनिया एक हरे- भरे कमखा़बी द्वीप मे सीमित हो जाती जिसका अपना विशिष्ट भूगोल - पहाड़, घाटी, नाले, ताल, तलैया होते और होते वहाँ के वासी - उत्सव मनाते गोटें करते । बरसात से जुड़ी एक और अविस्मरणीय याद बीर - बहुटियों की थी । वह सुर्ख़ मख़मली कीड़े जिनके बारे मे कहा जाता था कि वह जन्नत मे पैदा होते है, और अल्लाह की रहमत की तरह आसमान से बरसते हैं। लोग आसमान से टपकी बीर - बहूटियों को इकट्ठा करके हिफ़ाज़त से रखते थे, और कई बीमारियों मे इलाज के लिए दावा के तौर पर इस्तेमाल करते थे।"६७

'दास्तान-ए-लापता' उपर्युक्त पंक्तियाँ ये सिद्ध करती हैं कि मंज़ूर एहतेशाम की यह रचना भी मुस्लिम समाज का वर्णन कर रही है तथा इसके सभी पात्र अपने मुस्लिम मजहब तथा धर्म के प्रति सद्भाव लिए हुए हैं।

-: बशारत मंज़िल मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना :-

" बदरुद्दीन तैयब जी पर । बालगंगाधर तिलक और शिवाजी महाराज की जय-जयकार और गणपति के त्यौहारों पर । इस पर कि दिल्ली और अवध मे लूटपाट किसी ने की और सज़ा 'बेगुनाह' मुसलमानों को भुगतनी पड़ी । मुसलमानों की खुद्दारी का क़सीदा एक तरफ़, अपने मज़हब मे यक़ीन और ईसाइयों से बरतर होने का यक़ीन दूसरी ओर, और हिन्दू की समझौता-परसती और अंग्रेज़ी शिक्षा की ओर झुकाव का मरसिया दूसरी ओर ।"६८

" सन्नाटे और सर्दी मे खड़े संजीदा अली ख़ान लम्बे-चौड़े क़ब्रस्तान मे फैलती-सिमटती परछाइयों के नाच को अपने चारों ओर देखते रहे थे और आरिफ़ के बारे मे वह सब सोचते रहे थे जो उस बीच उन्हें पता चला था : आरिफ़ मे ड्राइंग बनाने और पेंटिंग करने की खुदादाद सलाहियत थी और बहुत कम-उम्री से वह अच्छी स्केचिंग करने और रंग भरने लगा था । क़ाज़ी साहब की ख़्वाहिश थी कि वह सबसे पहले कुरान हिफ़्ज़ करें और फिर फिर धार्मिक शिक्षा हासिल करें । उसने दोनों काम करने चाहे और पूरा कुरान हिफ़्ज़ करने के बाद दर्से-निज़ामी की शिक्षा भी पूरी करनी चाही जो बहरहाल उसके पहले शौक, ड्राइंग और पेंटिंग के कारण अधूरी छूट गई । ड्राइंग मे लैण्डस्केप बनाने तक तो सब ठीक रहा लेकिन जब उसने इंसानों के आकार बनाने और पेंट करना चाहे तो क़ाज़ी कमालुद्दीन ने एतराज़ किया । मुसलमानों के लिए मूर्तिपूजा ही नही, मूर्ति बनाना भी हराम था।"६९

" उधर मुसलमान नवाबों, रईसज़ादों, जमींदारों और उच्च वर्ग से सम्बन्धित लोगों ने अपनी अलग जमात, मुस्लिम लीग की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य मुसलमानों के 'जाइज़' अधिकारों के लिए लड़ना था । मुस्लिम लीग का जनाधार बहुत सीमित था क्योंकि मुसलमानों मे शिक्षित मध्यवर्ग बराए नाम था । गिनती के ऐसे लोग थे जिनके पास सब कुछ था और बड़ी संख्या अनपढ़, ग़रीब और ऐसे लोगों की थी जो भावनात्मक स्तर पर खुद को अपने खुशहाल भाइयों पर आश्रित समझते थे ।"७०

" —उसके असबाब अब भी आपको इर्द-गिर्द नज़र नही आते ? किसी ने व्यंग्यात्मक स्वर मे कहा था—बंगाल का बँटवारा अगर हिन्दू-मुस्लिम नही, महज़ बंगाली और ग़ैर-बंगाली का मामला है तो उसकी मुख़ालिफ़त करनेवाले गंगा मे स्नान करके या काली के सामने तिलक करके उसे धर्मयुद्ध की शक्ल क्यों दे रहे हैं ? शिवाजी और प्रताप की जय-जयकार हो रही है और औरंगज़ेब-अकबर विदेशी लुटेरे करार दिए जा चुके हैं । भारत-माता की जय बोली जा रही है, और जो बोल रहे हैं वही उसकी जाइज़ सन्तान है । हम लोग सब नाजाइज़ औलादें हैं ।"७१

" दुनिया भी, मज़हब थे । हुकूमत करनेवाले और गुलाम थे अंग्रेज थे । अंग्रेज़ थे और हिन्दुस्तानी थे । हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सब आपस मे भाई-भाई (।) थे, और एक अन्तहीन चूहा-बिल्ली का खेल था । देश गुलाम होता है, संजीदा को लगता था, खुद अपने आचरण, अपनी संवेदनशीलता, अपने स्वार्थ और दिशाहीनता का । कोई भी बाहरी ताक़त हमारी भीतरी कमज़ोरियों से कड़ी-दर-कड़ी मिलकर बनी वह ज़ंजीर होती है जिससे पिण्ड छुड़ाने, सामना न करने को कभी हम उसे फ़िरंगी का नाम दे देते हैं, कभी सुविधानुसार, किसी दूसरे हमलावर का । सारे हारे हुए हमलावर एकजुट होकर गुलाम बन जाते हैं ।"७२

'बशारत मंज़िल' मंज़ूर एहतेशाम जी की एक ऐसी रचना है जिसर्मे हिन्दू , मुस्लिम, सिक्ख तथा इसाई सभी धर्मों के सद्भाव को दर्शाया गया है इसमे इन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम की विचारधारा को एक बतलाया है तथा दोनों के सद्भाव को भी उपर्युक्त पंक्तियों मे पुष्टि भाव प्रदान किए हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास मे एहतेशाम जी के पात्र अपने धर्म की धार्मिक सद्भावना के साथ अन्य धर्म को भी महत्त्व देते हैं क्योंकि सभी धर्म समान हैं।

-: पहर ढलते मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना :-

" जिसे 'माइनर' बनाकर शोहरत दी जा रही थी, वह अभी तक न जाने कितने नौजवान लड़कों से खेल और उन्हें खा चुकी थी । इस धर्म की है तो क्या हुआ, उस धर्म की भी हो सकती थी । फितरत मजहब के मांडवे -तले थोड़ी परवान चढ़ती है। बात को हिंदू मुसलमान का रंग दिया ही इसलिए गया कि लोगों को उसमे सियासी फायदे का मौका नजर आया ।"७३

" कोई तब्दीली थी जो उसके वजूद मे धीरे-धीरे बैठती जा रही थी। एक जमाना था की शेरो -शायरी और गाने- बजाने की महफिलों से उसे सख्त नफरत थी। दिमागी अय्याशी, इन सब के लिए उसके पास बस, एक ही नाम था। और फिर कव्वाली । मजहब से उसे क्या लेना देना। उसका रहन-सहन, पहनावा, बोलचाल मुसलमानों का था। क्योंकि यह सब उसे पैदाइशी फिर मे मिला था। मुसलमानों मे ही उसके रिश्तेदार थे, उन्हीं के तौर -तरीके, रस्मो- रिवाज, निकाह मस्जिद, मे ईद की नमाज ईदगाह मे।"७४

" काश । वह खुद तब जिंदा होता और एक मिसाल बन कर दिखाता मुल्क और कौमियत क्या होते हैं। कॉलेज के वह दिन जब रियासत का नया-नया मन मर्जर हुआ था। जब कॉलेज मे कट्टर- टाइप के मुसलमान लड़के उसे ' काली भेड़ ' कहा करते थे। उस दौरान जो कुछ भी हुआ उसके बाद भी जब बहुत सारी उन 'सफेद भेड़ों' ने अपने मसले उसके सामने रखे तो उनकी सच्चाई समझने के बाद उनके लिए लड़ने से पीछे नही हटा थ। किसलिए ? वह तो आज भी काली भेड़ ही रहा । मुसलमान और हिंदू दोनों ही की नजर मे काली भेड़........ फिरकापरस्त । हिंदुओं को खुश करने वाला मुसलमानों का नया काइद ।"७५

" क्या चुनाव वह सिर्फ मुसलमानों के वोटों से जीता था । जहां से वह कामयाब हुआ था, वहाँ मुसलमान वोट डालने वालों की तादाद ही कितनी थी । और उनमे से कितनों ने तो खुद उसके खिलाफ चुनाव लड़ा था । लेकिन चुनाव जीतने के कुछ ही अरसे बाद जब उसने गौर किया तो अंदाजा हुआ था कि उसके आसपास के मजमे मे सारे - के - सारे ही मुसलमान थे।"७६

" कव्वाल की उठती -गिरती आवाज और उसके आसपास बैठे लड़कों का एक खास लय मे तालियां पीटना....... किसी शायर का कलाम जिसमें बंदे के कमतर होने का रह-रहकर एतिराफ........ खुदा के बड़प्पन, उसके बहुत बेहतर होने का ऐलान..... हमारी खता ओं को बख्श दे मौला ।.... आका ।..... हम बहुत गुनेगार हैं, नाफरमान हैं, हमारी भूलों और गलतियों को माफ फरमा ।......"७७

उपर्युक्त उपन्यास के पुष्टी तथ्यों से यह सिद्ध हो जाता है कि मंजूर एहतेशाम जी ने इस उपन्यास मे धार्मिक सद्भावना का वर्णन किया है तथा इन्होंने इस रचना (पहर ढलते) मे बहुत ही सुन्दर धार्मिक भावों को इन पंक्तियों मे प्रस्तुत किया है। इनके पात्र ऐसे है की ये अपने आप मे धर्म के सद्भाव को लिए हुए प्रतीत होते हैं तथा इन्होंने मुस्लिम धर्म के सद्भाव को पाठक के सामने प्रस्तुत किया है।

- : मदरसा मे व्याप्त धार्मिक सद्भावना :-

" अवश्य, यही भावना उसके सगों को खोजने के पीछे रही होगी, ख़ासतौर पर इस सार्वजनिक घोषणा के बाद कि अब्बा उसके सगे पिता नही थे, अकेलेपन के बढ़ते एहसास का सामना कर सकने के लिए । उसे क्या पता था कि ख़ानदान की तफ़सील, सरहिन्द से सम्बन्ध और वहाँ पूर्वजों का लम्बा पड़ाव, आलिमों का सिलसिला जो जिहाद का रास्ता तय करता, अन्ततः एक प्रकार के सूफ़ी पंथ मे परिवर्तित होकर लम्बे ज़माने से बरेली को अपना घर बनाए हुए था, जहाँ उसके दादा (परछाईं के पिता) का स्थापित किया हुआ एक दीनी 'मदरसा' था, के साथ-साथ उसे कुछ ऐसा भी जानने को मिलेगा जो कुछ समय के लिए अम्मा के बेदाग़ व्यक्तित्व को अजीब प्रकार से धुँधलाकर, उन्हें गहरे सन्देह की परिधि मे खड़ा कर देगा ।"७८

" मज़हब और मज़हबी लोगों के बारे मे कम-से-कम शब्दों मे उसने अपना सोच और ख़याल मरियम से कहा था, मज़ाक मे पंजाब के सरहिन्द-क्षेत्र का उल्लेख करते जहाँ से बीते समय मे बेदी परिवार का सम्बन्ध रहा था, और (विश्वसनीय तौर पर पता न होने के बावज़ूद ।) उसे एहसास था, उसके पैतृक परिवार का भी; अगर पिंकी ने मुसलमान होना चुना था, तो मान ले, साबिर सिख हो गया था । अधर्मी या विधर्मी हुए बिना, उसका इतिहास का सीमित-पाठ, उसे मज़हब के माननेवालों, विशेषकर उसके अपने मज़हब के माननेवालों से अनेक शिकायतें करने पर मजबूर करता था । मरियम उसके कभी-कभार नमाज पढ़ लेने या अल्लाह-अल्लाह को किसी प्रकार के कड़े धार्मिक अनुशासन से न गड़बड़ाए ।"७९

" —हमें मालूम है, हम जो इन्हें पढ़ाते हैं, उन्होंने सहन मे सिपारे खोले, गुनगुनाते बच्चों की ओर इशारा करके कहा—उसका रिश्ता हमारे पेट से है । जो तालीम इन्हें चाहिए, आत्म-निर्भरता के लिए, वह मर-खप के थोड़ी ख़ुद तो सीख ली, लेकिन इन्हें सिखा सकने की हैसियत मे नही । खुलकर भी, और इशारों से भी, जो इनमे लायक़ लगता है, उसे बताने की कोशिश ज़रूर करते हैं कि तुम्हारा मज़हब इसी तालीम और हिफ़्ज़ करके मस्जिद-मस्जिद रमज़ानों मे तरावीह पढ़ाने, उटक्के पाजामे और मैली टोपियाँ पहनने, झाड़-झंखाड़ दाढ़ियाँ बढ़ाने, या इतर का फाहा कान मे टुमने, आँखों मे सुरमा-काजल लगाने, मिसवाक चबाने पर ख़त्म नही है । यह तो क़ैदख़ाने हैं जिन्हें तुमने अपने

लिए चुन लिया है । मज़हब तालीम की तरग़ीब (प्रेरणा) का नाम है, और दुनिया मे जो कुछ है, उसे जानने-समझने की हिदायत करता है... ।"८०

" आप अय्याशी और नफ़रत की भेलपुरी बने सजे हैं और उधर मरियम, धीरे-धीरे, आपसे दूर और आपके द्वारा परिभाषित 'मरियम फैन्स क्लब' जिसका सरबराह आमिर, आपका कज़िन है, जिससे मज़हबी मामलों को लेकर आपका मन-मुटाव और दूरी, भोपाल के पिछले पड़ाव मे हो चुका है, के बेहद क़रीब होती जा रही है । वह मरियम के साथ पूरी तरह सहमत है कि साबिर के साथ मरियम और बिटिया का भविष्य अन्धकारमय है । क्या इसी सबकी ख़ातिर मरियम ने धर्म-परिवर्तन की महान् क़ुर्बानी दी थी ।"८१

" और ग़नी मियाँ किसी ज़माने के बगदाद और निज़ामुल मुल्क, उमर खैयाम और हसन बिन सब्बाह की दोस्ती की दास्तान मज़े ले-लेकर सुनाने लगे थे, जो उसके लिए दिलचस्प थी : 'मदरसा' निज़ामिया, बगदाद जिसमें इमाम ग़ज़ाली ने पढ़ाया था और लखनऊ का फिरंगी महल और दर्से निज़ामी का कोर्स जो लम्बे समय तक ठोस शिक्षा की गारंटी माना जाता था, उसके लिए चौंकानेवाली जानकारी थी । या फिर अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज और जामिया मिल्लिया इस्लामिया के झगड़ों की तफ़सील और यह कि जामिया मिल्लिया की शुरुआत किन हालात मे अलीगढ़ मे ही की गई और किस तरह बाद मे उसे दिल्ली ले जाया गया । उसे आश्चर्य यह हुआ कि अलीगढ़ मामू ने वह सब उसे उतने विस्तार से कभी नही बताया । यानी अलीगढ़ और जामिया के बीच एक प्रकार का मनमुटाव आज भी मौजूद था । हर बार उसे यही लगता था कि वह ख़ुद कितना कम जानता था, या जीते-जी, एक जनम मे जान पाएगा ।"८२

मंज़ूर एहतेशाम जी का 'मदरसा' उपन्यास अपने नाम मे ही धार्मिक सद्भाव को संजोए हुए है जिसके नाम से ही यह प्रतीत हो जाता है कि जैसे यह मुस्लिम धर्म को परिभाषित कर रहा हो। उपर्युक्त तथ्यों मे मुस्लिम धर्म की सद्भावना को दर्शाया गया है जिसमें पाठक एक मदरसे के भाव को पढ़ता है तथा उसके बनने के संदर्भ मे धार्मिक सद्भाव को महसूस करता है।

-: साम्प्रदायिक सद्भावना :-

भूमिका :- साम्प्रदायिक सद्भावना वह सद्भावना है जो दो विरोधी धर्मों के बीच उत्पन्न होता है । इस सद्भावना मे एक धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म के विरोध मे अपनी विचाधारा रखता है तथा वही विचारधारा साम्प्रदायिक सद्भाव मे परिवर्तित हो जाती है ।

इस सद्भावना मे व्यक्ति अपने धार्मिक सिद्धांत के प्रचार के लिए आपस मे संघर्ष करने के लिए भी तैयार हो जाता है और इसमे व्यक्ति विरोधाभासी हो जाता है जिससे यह सद्भावना उत्पन्न होकर एक द्वंद्व का रूप ले लेती है ।

संतो के समय देश मे मुसलमानों के आगमन और उनके शासन तथा धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया से हिन्दू अत्यंत दुखी थे उनको सत्ता पक्ष की ओर से किसी प्रकार का सहयोग नही मिलता था उल्टे उनको अलग-अलग ढंग से प्रताड़ित किया जाता था इसके परिणाम स्वरूप हिन्दू और मुसलमानों मे साम्प्रदायिक और धार्मिक टकराव प्राय: हुआ करते थे और ऐसी विकट स्थिति मे साम्प्रदायिक सद्भाव नही था ये एक दूसरे को शत्रु समझते थे । इसके अतिरिक्त हिन्दुओं मे भी विभिन्न प्रकार के धार्मिक सम्प्रदाय, मतवाद, पंथ आदि प्रचलित थे । इनमे भी कोई तालमेल नही था और एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के लोगों के कर्मकाण्डो की खिल्ली उड़ाते थे इसी की वजह से भारतीय समाज अनेक भागों मे बटा हुआ था । इस अलगाव के कारण भारतीय समाज मे बिखराव आ गया था और साम्प्रदायिक सद्भभावना फेल गई थी ।

यदि हम यह कहें की इतिहास इस बात का साक्षी है की कालचक्र की गति सर्वदा सक्रिय रहती है तो यह ग़लत नही होगा अर्थात् जब एक से अधिक धर्म चुनौती भरे शब्दों मे अपने धर्म का प्रचार प्रसार करते हैं तो अन्य धर्म के लोगों के मन मे संघर्ष का भाव उत्पन्न होना शुरू हो जाता है तथा ऐसे ही धर्मों के आपसी टकराव मे साम्प्रदायिकता का भाव उत्पन्न होता है जिसमें एक धर्म दूसरे धर्म को कम महत्वपूर्ण सिद्ध करने के लिए उन धर्मों के अनुयाई संघर्ष करते रहते हैं ।

महात्मा गांधी ने 'हिन्द-स्वराज' पुस्तक मे 'हिन्दुस्तान की दशा-3 हिन्दू-मुसलमान' मे कहा है --हिन्दुस्तान मे चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं, उससे वह एक राष्ट्र मिटने वाला नही है। जो नये लोग उसमे दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रज़ा मे घुल-मिल जाते हैं। ऐसा हो, तभी कोई मुल्क एक राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क मे दूसरे लोगों का समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिन्दुस्तान ऐसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक राष्ट्र होकर रहने वाले हो गए एक-दूसरे के धर्म मे दखल नही देते, अगर देते हैं तो समझना चाहिए कि वे एक राष्ट्र होने लायक नही हैं...।'

प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने साम्प्रदायिक सौहार्द अवार्ड (2009) समारोह को संबोधित करते हुए कहा, 'भारत विश्व के सभी महान धर्मों का घर रहा है, कुछ धर्म यहाँ पैदा हुए तो कुछ धर्मों की जड़ें हमारे महान प्राचीनतम देश से जुड़ी हैं।' प्रधानमंत्री ने इस उपमहाद्वीप मे सदियों से चले आ रहे सामाजिक एवं बौद्धिक परिवेश की सराहना की है, जिसमें अनेक धर्मों ने सह-अस्तित्व के मार्ग पर चलकर एक-दूसरे के धर्मों का भी समूह बनाया। उन्होंने कहा कि हिंसा का किसी धर्म मे कोई स्थान नही है, कोई धर्म घृणा नही सिखाता है। जो लोग धर्म को हिंसा, अलगाववाद और भेदभाव के लिए इस्तेमाल करते हैं वे अपने धर्म के प्रति सच्चे वफादार कैसे हो सकते हैं।

केंद्र सरकार ने साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखने के लिए निर्देश जारी किये हैं। साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखना और साम्प्रदायिक गड़बड़ी एवं दंगों को होने से रोकना राज्यों की जिम्मेदारी है। राज्य सरकरों की यह भी जिम्मेदारी है कि वे प्रभावितों को सरंक्षण और राहत दें। केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों को स्पष्ट रूप से निर्देश दिया है कि वह ऐसी अवांछित हरकतों को रोकने के लिए विरोधात्मक उपाय करें, अगर तमाम सतर्कता एवं विरोधात्मक उपायों के बावजूद ऐसी घटनाएं घटती हैं तो उन पर तुरंत प्रभावी ढंग से काबू पाया जाए और इसे रोकने के लिए नियोजित तरीके से कदम उठाये जाएं। विभिन्न तरह के धार्मिक जुलूसों एवं लाउडस्पीकरों के अनियंत्रित उपयोग से धार्मिक भावनाएं भड़काने के प्रयासों को कड़ाई से कुचलने से साम्प्रदायिक सद्भाव को बिगड़ने से बचाया जा सकता है। ऐसे अवसरों की वीडियो/आडियो कवरेज करवाए जाने पर जोर दिया गया है। साथ ही इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि किसी भी धार्मिक स्थल को नुकसान न हो।

साम्प्रदायिक झगड़ों और दंगों का सबसे अधिक प्रभाव छोटे दुकानदारों, ठेले-रेहड़ीवालों, खोमचेवालों और रोज़मर्रा कमाई कर अपने परिवार का गुजर बसर करने वालों पर पड़ता है। चूल्हों की आँच ठंडी पड़ जाती है, अबोध बच्चे भूख से बिलखते रहते हैं और सार्वजनिक संपत्ति का जो नुकसान होता है वह अलग। सबसे बड़ी मार पड़ती है औरतों पर, जिसके पिता, भाई, पति और बेटे इन दंगों और झगड़ा-फसाद के शिकार होते हैं। रोज़मर्रा घरेलू जरूरत की चीजों की आपूर्ति बंद हो जाती है। इन परिवारों पर साम्प्रदायिक दंगों का गहरा असर पड़ता है, उन्हें समुचित राहत या बीमा जैसी कोई सुविधा भी नही मिल पाती। यही लोग साम्प्रदायिक सौहार्द-सद्भाव बनाये रखने मे सबसे अधिक मददगार होते हैं। प्रशासन को ऐसे लोगों का सहयोग लेकर साम्प्रदायिक सद्भाव को सुनिश्चित करना चाहिए।

जब तक एक धर्म सम्प्रदाय के लोग यह मानते रहेंगे की उन्हे ही परमलोक की प्राप्ति हुई है तथा अन्य सभी धर्मों के अनुयायी माया मोह के भंवर मे पड़े हुए हैं और अंधकार मे भटक रहे हैं तब तक मनुष्यों के बीच समन्वय तथा धार्मिक एकता स्थापित नही हो सकती हमेंशा साम्प्रदायिक सद्भावना बनी रहेगी और संघर्ष चलते रहेंगे ।

आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने साम्प्रदायिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे साम्प्रदायिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे साम्प्रदायिक सद्भावना जागृत हो उठती है । इनके उपन्यासों के द्वारा इसकी पुष्टि हम निम्न रूप मे कर रहे हैं ।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे साम्प्रदायिक सद्भावना :-

मंज़ूर एहतेशाम जी अपने उपन्यासों मे साम्प्रदायिक सद्भावना को लेकर भी चले है इन्होंने अपने उपन्यासों मे भारत-विभाजन के दौरान जो परिस्थितियाँ थी उनको उजागर करने का प्रयास किया है तथा इस दौरान जो साम्प्रदायिक दंगे चल रहे थे उनका भी बड़ा ही हृदय-विदारक प्रस्तुतीकरण किया है । इनकी रचनाओं मे साम्प्रदायिक सद्भाव देखने को भी मिलता है निम्न उपन्यासों के उदाहरणों द्वारा इसकी पुष्टि हमने की है:-

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त साम्प्रदायिक सद्भावना :-

" इक़बाल-मैदान से इक़बाल, इक़बाल और पाकिस्तान, पाकिस्तान की परिकल्पना मे इक़बाल की भूमिका, सर सैयद और अलीगढ़ मूवमेट, शाह बानो केस और पर्सनल-लॉ मे हकूमत की दख़लअंदाज़ी, कितनी जा-कितनी बेजा, बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि को लेकर मज़बूती पकड़ती टकराव की ख़बरें, प्रगतिशील मूल्यों का दैनिक जीवन मे हनन, हिंदू से यह उम्मीद नही थी, हिंदू को यह ज़ैब नही देता, मुसलमान क्या करे, मुसलमान को क्या करना चाहिए ... ?"८३

मंज़ूर एहतेशाम जी ने इस उपन्यास मे साम्प्रदायिक सद्भावना को दर्शाया है । इस रचना मे बाबरी मस्ज़िद तथा राम मंदिर विवाद को दर्शाया गया है जो की अपने आप मे ही साम्प्रदायिक सद्भावना को समाहित किए हुए है तथा उपर्युक्त पंक्तियों मे हिन्दू-मुस्लिम विवाद को दर्शाया गया है जिससे साम्प्रदायिक सद्भावना को हम देख तथा महसूस भी कर सकते हैं क्योंकि ये विवाद आज भी कहीं न कहीं हमें देखने को मिल जाता है।

- : बशारत मंज़िल मे व्याप्त साम्प्रदायिक सद्भावना :-

" फिर बाद मे उन्होंने यह भी सोचा था कि इसी अन्दाज़ के सोच ने पुनरुत्थानवादिता को जन्म दिया जिसके कारण हिन्दुओं मे भी ऐसे चिन्तक और समाज-सुधारक पैदा हुए थे जिनके कारण हिन्दू-मुस्लिम के बीच की दूरी को भी बढ़ावा मिला ।"८४

एहतेशाम जी ने बशारत मंज़िल की इन पंक्तियों मे साम्प्रदायिक सद्भावना का वर्णन किया है और यह व्यक्त किया गया है कि हिन्दू तथा मुसलमान के बीच मे साम्प्रदायिकता फेल रही है जिसके करें से इनमे दूरियां और बढ़ रही है। इस तथ्य पर साम्प्रदायिक सद्भावना का समावेश एहतेशाम जी ने इस रचना मे प्रस्तुत किया है।

- : मदरसा मे व्याप्त साम्प्रदायिक सद्भावना :-

" उसके दुश्मन मुसलमान ही नही, कट्टरपंथी हिन्दू भी थे । उसका जीवन-अनुभव और उसके अनुरूप दृष्टिकोण था, और वह मुसलमानों को ज़िन्दगी की दौड़ मे बहुत पिछड़ा हुआ, और ऐसा होने के लिए ग़लत बहाने तलाशता-बयान कर पाता था । दक़ियानूसी सोच और कठमुल्लाओ की परवाह किए बिना, और उन्हें बुरा-भला कहते हुए, वह यही सच कहता था कि हर ज़िन्दा चीज़ समय के साथ बदलती है और अगर वह बदलना छोड़ दे तो इसका मतलब वह ज़िन्दा नही रही ।"८५

" फिर पता चला, उस ख़ानदान के तो लगभग सब ही ऐसे लोग जिनका सम्बन्ध आज़ादी से पहले की खेप से था, न केवल अपने नाम के साथ स्वतंत्रता-सेनानी जोड़ते थे, बल्कि जो निकम्मे थे, वह शासन से वज़ीफ़े वसूल कर रहे थे, और जो समझदार थे, वह राजनीति कर रहे थे । अलग-अलग राजनीतिक दलों और जमातों मे वह मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे । कांग्रेस से लेकर लोकदल, और जमीयतुल उलेमा से लेकर उन तमाम आउट-फ़िट्स मे जो मुसलमानों के साथ मौज़ूद थीं या आए दिन बन और बिगड़ रही थीं, उनकी उपस्थिति ज़रूरी थी ।"८६

" —लेकिन वह वक़्त ऐसे लोगों के लिए ग़लत था, और दिन-ब-दिन यह साफ़ होता जा रहा था कि किसी सियासी गुट मे शामिल हुए बग़ैर कोई हीरो का रुतबा नही पा सकता था... । —और गुट का मतलब, मोटे अल्फ़ाज़ मे, हिन्दू और मुस्लिम नही, हिन्दू बरख़िलाफ़ मुसलमान था...।"८७

" यह सोचकर कि अगर परछाईं की, अम्मा को लेकर, दीवानगी कुछ और मे रूपान्तरित न हुई होती तो उस नाज़ुक घड़ी, जब तुम गर्भ मे थे, उन्हें मायके छोड़कर, वह लाहौर हरगिज न गया होता क्योंकि उस क्षण हिन्दू-मुस्लिम तनातनी चरम पर थी । अंग्रेज़ जो खेल का रेफरी था, सीटी बजाते-बजाते थककर बेहाल हो चुका था ।"८८

'मदरसा' उपन्यास मे साम्प्रदायिक सद्भावना को एहतेशाम जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है की जैसे हिन्दू मुसलमान के कट्टर विरोधी हो तथा हिन्दू मुसलमान के खिलाफ आवाज उठा रहा हो। उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों मे ये भी सिद्ध किया गया है कि हिन्दू कट्टर पंथी थे तथा मुस्लिम अंग्रेजों के दुश्मन थे।

-:सांस्कृतिक सद्भावना :-

भूमिका:- मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता को अर्जित करता है। 'होबेल' का मत है, 'वह संस्कृति ही है, जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों से, एक समूह को दूसरे समूहों से और एक समाज को दूसरे समाज से अलग करती है।'

सामान्य अर्थ मे, संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की सम्पूर्णता है। लेकिन संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तृत है कि उसे एक वाक्य मे परिभाषित करना सम्भव नही है। वास्तव मे मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ हमें चारों ओर से प्रभावित करती हैं, उन सभी की सम्पूर्णता को हम संस्कृति कहते हैं और इस प्रकार संस्कृति के इस घेरे का नाम ही 'सांस्कृतिक पर्यावरण' है।

दूसरे शब्दों मे, 'संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों, परम्पराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं।'

सर्वप्रथम वायु पुराण मे 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', तथा 'मोक्ष' विषयक मानवीय घटनाओं को 'संस्कृति' के अन्तर्गत समाहित किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानव जीवन के दिन-प्रतिदिन का आचार-विचार, जीवन शैली तथा कार्य-व्यवहार ही संस्कृति कहलाती है। मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत विषयक कार्य-कलापों, परम्परागत प्रथाओं, खान-पान, संस्कार इत्यादि के समन्वय को संस्कृति कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने संस्कार के परिवर्तित रूप को ही संस्कृति स्वीकार किया है।

'संस्कृति' यह मनुष्य के जीवन का एक ऐसा तत्व है जिससे प्रत्येक व्यक्ति बंधा रहता है तथा उसी मे अपने जीवन की क्रियाएं करता रहता है । जब एक मनुष्य किसी समुदाय मे जन्म लेता है तो उसे उस समुदाय या धर्म की संस्कृतियों को ही सर्वप्रथम स्वीकार करना पड़ता है क्योंकि उसके परिवार के सदस्य उसी धर्म तथा संस्कृति को अपनाते हुए आ रहे हैं इसी वजह से वह शिशु अपनी दिनचर्या मे चाहे वो संस्कृति खान - पान से संबंधित हो या पहनावे से इनको वो समाहित करता चला जाता है और उसी का ज्ञान भी अर्जन करता है ।

संस्कृति जीवन से जुड़ी हुई है। यह कोई बाह्य वस्तु नही है और न ही कोई आभूषण है जिसे मनुष्य प्रयोग कर सके। यह केवल रंगों का स्पर्श मात्र ही नही है। यह वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाता है। संस्कृति के बिना मनुष्य ही नही रहेंगे। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी है। यह हमें जीवन जीने का तरीका सिखाती है। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और साथ ही संस्कृति मानव को मानव बनाती है।

संस्कृति हमारे जीवन का एक मौलिक तत्त्व है। हमें धार्मिक पहचान का सम्मान करना चाहिए, साथ ही सामयिक प्रयत्नों से भी परिचित होना चाहिए जिनसे अन्तःधार्मिक विश्वासों की बातचीत हो सके, जिन्हें प्रायः 'अन्तः सांस्कृतिक वार्तालाप' कहा जाता है। विश्व जैसे-जैसे जुड़ता चला जा रहा है, हम अधिक से अधिक वैश्विक हो रहे हैं और अधिक व्यापक वैश्विक स्तर पर जी रहे हैं। हम यह नही सोच सकते कि जीने का एक ही तरीका होता है और वही सत्य मार्ग है। सह-अस्तित्व की आवश्यकता ने विभिन्न संस्कृतियों और विश्वासों के सह-अस्तित्व को भी आवश्यक बना दिया है। इसलिए इससे पहले कि हम इस प्रकार की कोई गलती करें अच्छा होगा कि हम अन्य संस्कृतियों को भी जानें और साथ ही अपनी संस्कृति को भी भली प्रकार समझ लें। हम दूसरी संस्कृतियों के विषय मे कैसे चर्चा कर सकते हैं जब तक हम अपनी संस्कृति के मूल्यों को भली प्रकार न समझ लें।

सत्य, शिव और सुन्दर ये तीन शाश्वत मूल्य हैं जो संस्कृति से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है। यह हमारे जीवन मे कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है और सौन्दर्यनुभूतिपरक मानव बनाती है। यह संस्कृति ही है जो हमें नैतिक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट सम्पर्क मे लाती है और इसी के साथ हमें प्रेम, सहिष्णुता और शान्ति का पाठ पढ़ाती है।

मनुष्य का जब धीरे - धीरे विकास होता है और जब वो समाज मे प्रवेश करता है तो उसे समाज मे भिन्न - भिन्न प्रकार की संस्कृतियों का सामना करना पड़ता है और तब उस संस्कृति को वह मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार अपनाता है तथा उसका वहन करता है ।

जब मनुष्य एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान जाता है तो वहाँ भी उसे भिन्न प्रकार की संस्कृति मिलती है तो उसे अन्य राज्य या देश जिसमें वह गया है वहाँ की संस्कृति के साथ उसे समझौता करना पड़ता है तथा वहाँ की भाषाई संस्कृति तथा खान - पान की संस्कृति को उसे अपनाना पड़ता है जिससे वहाँ पर मौजूद लोगों के साथ उसका संचार हो सके ।

आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने सांस्कृतिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे सांस्कृतिक सद्भावना को अपने उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे सांस्कृतिक सद्भावना जागृत हो उठती है । जिसकी पुष्टि इनके उपन्यासों के द्वारा हम कर रहे हैं।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे सांस्कृतिक सद्भावना :-

वर्तमान युग के लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी रचनाओं मे कई सद्भावों का प्रयोग किया है । इन्होंने अपनी कृतियों को भारत की संस्कृति से अछूता नही रखा है ये अपनी रचनाओं मे सांस्कृतिक सद्भावना को एक विशेष स्थान प्रदान करते आ रहे हैं जिसकी पुष्टि के लिए हम इनके द्वारा रचित कई उपन्यासों से पुष्टि तथ्यों को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

- : कुछ दिन और मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना : -

" उसी शाम हम लोग फ़िल्म देखने गए, वहाँ से 'मून एंड स्टार्स' फ्लोर-शो देखा और वहीं रेस्तराँ मे खाना खाया। राजू ने ख़ासी शराब भी पी और मुझे भी मजबूर कर- करके जिन पिलाई।"८९

" 'अगर इसमे कोई बुराई होती, ' वह तर्क देते –'तो बाथरूम–अटेच–टु–बेडरूम होता ही क्यों ? अंग्रेज़ जो भी करता है, सोच - समझकर करता है । घर का यह पूरा हिस्सा मेरी मर्ज़ी का बना है । हमारे पिताजी को तो इसमे कोई पाइंट ही नज़र नही आता था ।'"९०

मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपनी 'कुछ दिन और' रचना मे पाश्चात्य संस्कृतिक सद्भावना को स्थान प्रदान किया है जिसमें पाश्चात्य संस्कृति के रहन - सहन, अंग्रेजी फिल्मों मे रुचि, तथा मदिरा सेवन को दर्शाया है । जो कि उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों मे हमें प्राप्त हुआ है।

- : सूखा बरगद मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना :-

" सलाम दादा की बीवी जिन्हें हम चची कहते हैं। फिर समरिस्तान का ऊंचा पहाड़ नजर मे घूम जाता, जहां हम एक बार पिकनिक पर गए थे। मैं देखती सलाम दादा अपने इकलौते, नन्हे बेटे पप्पू- हजरत इस्माइल- का हाथ थामे वह पहाड़ चढ़ते जा रहे हैं। अब वह पप्पू के हाथ पीछे बांध रहे हैं.... अब अपनी आँखों पर पट्टी। वह छुरी उन्होंने पप्पू के हलक पर रखी.... वह खुदा का हुक्म हुआ और जिब्रील एक मेढ़े के साथ आए.... पलक झपकते उन्होंने पप्पू को बचा लिया.... मेढ़ा कुर्बान हो गया। हजरत जिब्रील देखने मे कैसे होंगे ? वह सलाम दादा को समझा रहे हैं कि ' अल्लाह मियाँ सिर्फ उनकी मोहब्बत का इम्तिहान लेना चाहते थे और वह इस इम्तिहान मे कामयाब हुए।' एक दिन पप्पू.... पप्पू नही, हजरत इस्माइल - खुदा के बहुत बड़े पैगंबर बनेंगे। आज के दिन से बकरा -ईद की कुर्बानी हर मुसलमान पर फर्ज की जाती है।"९१

" स्कूलों से संबंधित आख़िरी याद उस फेयरवेल पिकनिक पार्टी की है जो जूनियर्स - यानी नवी और दसवीं के छात्रों ने हमें दी थी। जाने कैसे मैडम हम लोगों को शहर के बाहर जाने की इजाजत देने को राजी हो गई और हम सब सीनियर टीचर्स वगैरह और छात्र, बस मे बैठकर एक सुबह शहर से पंद्रह मील दूर उस रेस्ट हाउस के लिए रवाना हो गए।"९२

" दिसंबर की एक पालों भरी, ठंडी, खामोश शाम जिसका रंग भी उसकी याद की ही तरह सुरमई था। मैं और विजय बैठक के कमरे मे, जब पहले मेरा और सोहेल का कमरा होता था, बैठे इंग्लिश रिकॉर्ड सुन रहे हैं। स्ट्रेंजर्स इन द नाइट, एक्सचेंजिंग ग्लान्सेस' - विजय रिकॉर्ड लाया है, मुझे ? या सुहेल को सुनाने ? हम लोग बातें कर रहे हैं नैंसी सिनाट्रा और फ्रैंक सिनाट्रा की, तारीफ कर रहे हैं गीत और धुन की। हैरान हो रहे हैं- बाप -बेटी मिलकर इतना अच्छा इश्किया गीत गा सकते हैं।"९३

" हम लोग," मैं कहती हूँ - " आगे कुछ करना ही नही चाहते। जागीरदार आना दिमाग से आगे बढ़ते हैं, तो प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के गुणगान करने लगते हैं।"। " नही," विजय जवाब देता है - " प्राचीन संस्कृति के बारे मे गर्वित होना तो कोई बुरी बात नही। हमारी संस्कृति ऐसी है कि उस पर गर्व किया जाए।"९४

" परवेज़ भाई, आज से दस साल पहले आपके कहने पर मैंने ' ब्रदर्स क्रामाजौफ ' पड़ी थी, और मेरा दिल दास्तोविस्की, ईवान और आपके साथ उन मासूम बच्चों की तकलीफ, उनकी सफरिंग पढ़कर पिघल उठा था, जिन्होंने दुनिया मे किसी का कुछ नही बिगड़ा- जिसको लेकर इवान, अल्योशा से कहता है कि अगर दुनिया मे कोई खुदा, कोई रहीम और करीब आसमानी होती तो यह नही बच्चे इस तरह तड़पते और मरते नही।"९५

उपर्युक्त 'सूखा बरगद' उपन्यास मे संस्कृति के पुष्टी तथ्यों से यह सिद्ध हो जाता है की एहतेशाम जी की इस रचना मे संस्कृतिक सद्भावना विद्यमान है तथा इनकी इस रचना के पात्र - परवेज़, रशीदा, विजय आदि पात्र भारत की प्राचीन सभ्यता का गुणगान करते हुए प्रतीत होते हैं जिनके माध्यम से संस्कृतिक सद्भावना को यहाँ दर्शाया गया है।

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना :-

" आपा जान जिनकी शादी के दिन सड़क के पार भारत टाकीज़ का उद्घाटन हुआ था, बरसात के मौसम मे फ़िल्म ' बरसात ' से । फ़िल्म के गाने ' जिया बेक़रार है ', ' तक धिना - धिन'और ' हवा मे उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा मलमल का ।' नसरत भाई जिन्हें खेलने ,गाने, अच्छे शेर सुनाने और अच्छे कपड़े पहनने का शौक़ था । कमाल मियाँ जो उम्र मे तो बड़े थे लेकिन निकटता के कारण वह बुजुर्गी का संबोधन ' भाई ' लगाने के बजाय सीधे - सीधे कमाल मियाँ कहकर बुलाता था ।"९६

" मगर हम हमेंशा तुम्हारे रहेंगे,' तरह - तरह के मनोरंजन के साधन, तुक - बेतुक आइनों का पंडाल, ' हँसी -घर' जिसके हर आईने मे सूरत - शक्ल नई तरह ख़राब होती थी, ' ज़िंदा - नाच - फड़कता - गाना ' जिसमें अलग - अलग लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों पर बनी - सँवरी लड़कियाँ नाचती और अभिनय करती थीं, या 'मौत - का - कुआँ' जिसमें एक कुएँ मे मोटरसाइकिल दौड़ता आदमी लगभग कुएँ की कगार तक आ जाता था । या एक दूसरा मौत का आइटम - ' मौत -की- छलाँग' जिसमें रात देर गए (यह नुमाइश का अंतिम आइटम होता था और सबको बिना अलग से टिकट लिए देखने को मिलता था) एक आदमी रिकॉर्ड- 'ओ ज़िंदगी के राही ,हिम्मत न हार जाना ' और फिर ' खेले जा तो आग से खिलाड़ी' की आवाज़ पर शरीर पर पहने कपड़ों पर पेट्रोल छिड़ककर एक लंबी सीढ़ी की ऊँचान से आग लगाकर, जब आग पूरी तरह भड़क उठती तो ज़मीन की ओर छलाँग लगाता था जहाँ एक पानी का लबालब हौज़ उसका स्वागत करता था । और स्वागत करते थे सैकड़ों दमबखुद तमाशबीन । और फिर प्रवेशद्वार ही की तरह एक दूसरा दरवाज़ा हुआ करता था, निकास।"९७

" सुनना पड़ेगा," संचालक ने मूक गंभीरता से कहा था, "यह आपका मुक़द्दर है कि यह जब- जब भी कहेंगे आपको सुनना पड़ेगा । क्यों साब ?" अपने कहे की झूठी ही ताईद उन्होंने बाक़ी सबसे चाही थी और 'यक़ीनन' का कोरस सुनकर प्रस्ताव रखनेवाले से बोले थे, " तो ख़ाँ, हो जाओ शुरू पहलवान ।"९८

" वाह-वाह करते श्रोताओं के बीच कोई सज्जन तरन्नुम से ग़ज़ल सुना रहे थे । राजनीति और इतिहास की भूल-भुलैया मे भटकने के बाद कहीं शरण मिलती थी तो चुटकलेबाज़ी या फिर शेरो - शायरी मे। शेरो - शायरी पर तान यूँ भी आकर टूटती थी कि सबको ही कुछ- न- कुछ सुनाने या सुनाए जा रहे पर राय देने का अवसर मिल जाता था। बैठक का यह अंतिम सत्र जिसमें शायरी सुनते - सुनाते, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते लोगों को अपने - अपने जूतों के तस्मे बाँधने का मौक़ा मिल जाता था और घड़ी मे वक़्त देखने का भी, दरअसल उस शाम लोगों की 'गुफा' से विदाई से कहीं ज़्यादा अगली शाम उनके वहाँ फिर से आने की भूमिका होती थी। शेरो - शायरी के लिए भी धीरे-धीरे ज़मीर एहमद ख़ान के मन मे एक अनजानी दूरी बनती जा रही थी। संभव है कि यह कमी उस कविता मे रही हो जो पिछले समय मे उसे पढ़ने या सुनने को मिली थी मगर डर यह लगता था कि कहीं किसी दिन ग़ालिब और मीर भी बेज़ायक़ा होकर न रह जाएँ । ऐसा भी नही कि उसका शायरी का शऊर ऊँचा या बेहतर हुआ हो या समझ मे आलोचनात्मक परिपक्वता पैदा हुई हो। बस शायरी मे मज़ा आना बंद हो गया था ।"९९

इस उपन्यास मे मंज़ूर एहतेशाम जी ने पात्रों के माध्यम से संस्कृतिक सद्भावना को प्रस्तुत किया है। इनकी रचना के पात्र - नसरत भाई इसके पुष्टिकर्ता है जो कि फिल्मी गानों, के साथ -साथ शेरो - शायरी सुनाने का बहुत शौक रखते थे तथा भारत टाकीज मे लगी फ़िल्म बरसात के गाने बहुत प्रचलित हुए थे। जो कि उस समय की संस्कृति से पाठक को रूबरू कराते है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं की एहतेशाम जी ने संस्कृतिक सद्भावना को अपनी इस रचना मे समाहित किया है।

- : बशारत मंज़िल मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना :-

" बन्दा अली ने संजीदा की ओर हौसलाअफ़ज़ा नज़रों से देखा था । संजीदा ने गला खखारा था, शेर पढ़ा था– न बदले आदमी जन्नत से भी बैतुल-हज़न अपना कि अपना घर है अपना और है अपना वतन अपना ।"१००

" नौबत की माँ, सरोज़ देवी जिन्हे संजीदा बड़ी माँ कहते थे और तीन बहनें—अलका, सुकन्या और गीता उन्हें परिवार के सदस्य की तरह समझती थीं । वह तीनों सुर की अच्छी समझ रखती थीं । और किसी उस्ताद से पक्के गाने की शिक्षा लेती थीं । यह शौक़ और योग्यता उन्हें दादा और पिता से विरसे मे मिली थी जो दोनों शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकार थे । सरोज़ देवी उर्दू के साथ-साथ फ़ारसी भी जानती थीं, 'शबनम' तख़ल्लुस करती थीं और अच्छे-ख़ासे शेर मौज़ूँ कर लिया करती थीं । शेर कहने मे संजीदा सोज़ की पहली हौसलाअफ़ज़ाई करनेवाली सरोज़ देवी ही थीं और कुछ समय तक वही सबसे पहले उनके शेर सुननेवाली रही थीं ।"१०१

" सरगुज़िश्त अपनी फ़साना है ज़माने के लिए गुम हो गए थे हम जहाँ से याद आने के लिए । इस बुढ़ापे के आलम मे मैं आज इस अजनबी जगह बैठा वह वक्तऔर ज़माना याद करता हूँ जो गुज़र गया... उन लोगों की यादों की महफ़िल सजाता हूँ जो नही रहे..."१०२

" कुछ शायर और कुछ शायरी के शौक़ीन शाम को बशारत मंज़िल पर आ धमके और वहाँ आए दिन शेरो-शायरी की नशिस्तें जमती और मेहमानों की खातिरदारी की जाती । हालाँकि संजीदा अली अभी छोटे थे और डिग्री उन्हें आगे चलकर करनी थी।"१०३

" विषय बदलते रहते और बातचीत लगातार चलती रहती । खुद अमतुल कबीर कम चुप रहने लगी थीं और लगता था अतीत मे वह जो कम बोली थीं अब उसका हिसाब बराबर करना चाहती थीं । सबसे आश्चर्य की बात संजीदा अली को यह लगती थी कि उन्होंने कभी भी अमतुल कबीर के मुँह से भोपाल, भोपाल के लोग और वहाँ जो उम्र का लम्बा हिस्सा गुज़रा था, उसका ज़िक्र नही सुना था। गोया भोपाल कोई ऐसी अदना-सी जगह हो जिसकी बात करना भी दिल्ली मे नामुनासिब हो और वहाँ जो जीवन उन्होंने शानो-शौकत से गुज़ारा वह दिल्ली मे रहकर फ़ाक़े करनेवाले के जीवन से भी कमतर हो । उनकी वह लकड़ी की चकोटी जो हमेंशा बग़ल मे दबी रहती थी और जिसके कारण भोपाल मे लोग उन्हें चकोटीवाली बेगम बुलाने लगे थे, बशारत मंज़िल मे पहले तो धूल खाती रही थी और फिर कहीं ग़ायब ही हो गई थी । हाँ, एक चीज़ ज़रूर ऐसी थी जो किसी बीमारी की तरह लगी भोपाल से उनके साथ-साथ दिल्ली पहुँच गई थी । भोपाल मे कारचोबी बटवे बनाए जाते

थे जो उन्हें अच्छे लगते थे । उन्हें बनाने की कला उन्होंने भोपाल मे रहते हुए सिद्ध कर ली थी । अब दिल्ली मे उन्होंने बिना भोपाल का नाम लिए अपने परिचितों को बटवे बनाने की कला सिखाना शुरू कर दिया था । यह बटवे दिल्ली मे तो इतने लोकप्रिय या मशहूर नही हुए लेकिन अमतुल कबीर की मेहनत बिल्कुल व्यर्थ भी नही गई थी । आनेवाले ज़माने मे उनकी एक शिष्या की शिष्या के परिवार ने इस बटवे बनाने के काम को व्यवसाय के रूप मे अपना लिया था । मज़े की स्थिति बन गई थी : भोपाली बटवे दिल्ली मे बनकर भोपाल आते थे और भोपाल की दुकानों से लोग उन्हें उपहारस्वरूप ख़रीदकर अपने साथ ले जाते थे । वह परिवार अभी भी दिल्ली मे है और खूब खुशहाल है । भोपाल भेजने को बटवा बनाने के अलावा भी उसने अपने काम को विस्तार दिया है और कुछ जाने-माने विदेशी नामों के सहयोग से देश के महत्वपूर्ण ड़िजाइनर्स-कास्ट्यूम बनानेवालों मे से एक है और करोड़ों का वार्षिक धन्धा करता है ।"१०४

इस रचना मे मंज़ूर एहतेशाम जी ने शेरो - शायरी की संस्कृति के साथ- साथ लोगों के पहनावे को भी बहुत ही बारीकी से दर्शाया है जिसर्मे भोपाल के रहन सहन तथा पहनावे को देखा जा सकता है दिल्ली के डिज़ाइनर कॉस्ट्यूम बनाने वाले को भी इन्होंने इस रचना मे समाहित किया है जो कि इन्हीं कपड़ों का कारोबार करता है तथा एक अच्छा खासा व्यापारी है जो कि इसी संस्कृति के पहनावे का व्यापार करके एक वर्ष मे करोड़ों रुपए कमा लेता है। मंज़ूर एहतेशाम जी ने इस रचना मे संस्कृतिक सद्भावना को प्रस्तुत किया है तथा हमने ऊपर इसके पुष्टि तथ्यों को दर्शाया है।

-: पहर ढलते मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना :-

" उसे यह नशिस्ते अच्छी लगती थी। शुरू -शुरू मे जरूर लगा था कि यह क्लासिकल म्यूजिक, आर्ट - और -पेंटिंग उसके बूते कि नही थी... धीरे-धीरे सब कुछ ठीक होता गया था सुनते रहने के साथ-साथ अच्छी म्यूजिक और बुरी म्यूजिक की तमीज भी होने लगती थी..... और ना भी हो तो क्या फर्क पड़ता है ? ।"१०५

" कव्वाल के कुछ कहने से पहले कैप्टन मुजीब ने नवाब साहब की तरफ मुड़ते हुए कहा था- आला हजरत, हिज हाईनैस मरहूम, यह गाना बहुत पसंद फरमाते थे.... जब कभी भी उसे सुनता हूँ, वह सारा जमाना और चेहरे आँखों मे घूम जाते हैं... हुज़ूर ने भी सुना होगा.... मेरी ख्वाहिश थी कि आज की रात....."१०६

रचनाकार ने अपनी इस रचना मे क्लासिकल म्यूजिक, आर्ट, पेंटिंग आदि के साथ-साथ कव्वाली की संस्कृतिक सद्भावना को भी प्रस्तुत किया है। जिससे यह जान पड़ता है कि इनकी पहर ढलते रचना मे पुरानी संस्कृति को उजागर किया जा रहा हो। उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर हमने ये सिद्ध करने का प्रयास भी किया है।

- : मदरसा मे व्याप्त सांस्कृतिक सद्भावना :-

" यह, कि उसके घर मे एक और लड़की भी थी जिस पर उसकी नज़र पड़ते ही धूप-छाँव फैलने लगती थी, और जिसकी आवाज़ मे दर्शन और सुषमा, आग्रह करके पंजाबी टप्पे, हीर वारिस शाह, मलिका पुखराज, फ़रीदा ख़ानम, बेग़म अख़्तर, हद यह कि मेहंदी हसन और ग़ुलाम अली की गायकी तथा चिल्लर फ़िल्मी गाने तक सुनते रहते थे, यह एहसास समय बीतने के साथ धीरे-धीरे होना शुरू हो गया था, और कुछ देर बाद जाकर पूरी तरह हो पाया था ।"१०७

" मुसलमान औरतें और लड़कियाँ, जिनमे ख़ासी तादाद स्कूल और कॉलेज जानेवाली लड़कियों की थी, पूरा काले रंग का बुर्क़ा पहनती थीं । इसमे भी, आज तक अधिक नही बदला है, लेकिन यह अम्मा और बम्बई वाले घर से इस अर्थ मे भिन्न था कि अम्मा सिर्फ़ अधूरा बुर्क़ा पहनती थीं, और अब्बा के दीनी स्वभाव के बावजूद, बहनों को बुर्क़ा न पहनने की स्वतंत्रता थी ।"१०८

" प्यासा, 35 एम.एम. मे,जो चल गई थी, और काग़ज़ के फूल— सिनेमास्कोप, जो फ्लॉप हो गई थी । इसके साथ-साथ उसे साहिर लुधियानवी नाम का आसरा मिल गया था, जिसकी शायरी ने जब-तब वही काम किया था, जो आगे जीवन मे कबीर, ग़ालिब, शेक्सपियर इत्यादि को करना था : दम-दिलासा देना । जबकि क़ैफ़ी आज़मी, सारी सुन्दरता के बावज़ूद 'वक़्त ने किया/ क्या हसीं सितम... ' और 'बिछुड़े सभी बारी-बारी' की ओट मे ही छिपे रह गए थे । उन्हें शायर की हैसियत से जान पाने का अवसर ही नही मिला ।"१०९

'मदरसा' मे तो एहतेशाम जी ने फिल्मी गानों एवं कई प्रसिद्ध गायकों को समाहित किया है जो कि ८० के दशक के प्रसिद्ध गायक थे तथा पंजाबी गानों की ताल पर नाच - नाच कर गाने वाले गायकों का वर्णन किया है और इसके साथ ही साथ संस्कृतिक सद्भावना को एहतेशाम जी ने मुस्लिम महिलाओं के पहनावे (बुर्खे) से प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम परम्परा मे विद्यालय जाते वक्त भी लड़कियों का बुरखा पहनना अनिवार्य था। उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों से यह सद्भावना सिद्ध हो जाती है।

-: भाषाई सद्भावना :-

भूमिका :- भाषाई सद्भावना एक ऐसी सद्भावना है जोकि एक शिक्षित वर्ग के लिए बहुत अधिक महत्व रखती है । कोई भी लेखक अपनी भावनाओं को जब शब्द देने का प्रयत्न करता है तब उस रचनाकार को भाषाई शब्दावली की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसकी भाषाई सद्भावना को उसकी रचनाओं मे देखा जा सकता है ।

यह सत्य कथन है कि भाषा एक जलता दीप है जिसका प्रकाश अंधकार की सत्ता को समाप्त करता है तथा भाषा ने ही मानव प्रगति और विकास को सम्भव बनाया तथा मनुष्य की समझ को विश्व समझ के साथ जोड़ा है हम यह कह सकते हैं की शब्द से भाषा बनती है, लेकिन शब्द भाषा नही है और भाषा से साहित्य लिखा जाता है, लेकिन भाषा साहित्य नही है इसमे लिखा हुआ शब्द अवश्य जादुई होता है क्योंकि यह दो भिन्न व्यक्तियों के बीच एक संवाद कायम करती है, भले ही वे भिन्न जाति या समय के हों।

सांस्कृतिक सद्भावना और भाषाई सद्भावना मे हमेंशा एक आंतरिक संबंध होता है और इस प्रकार इनमे समझ तथा विचार आदि के विशिष्ट व स्थायी रूप बनते हैं। भाषा कोई संकेत व्यवस्था या शब्दार्थ विज्ञान नही है जिसमें व्याकरणीय ढांचे से अधिक कुछ भी आवश्यक न हो। इसके पीछे यदि जीवित व्यक्ति को भुला दिया जाए तो शब्दार्थ विज्ञान की व्याख्याएं सहज ही बौद्धिक खेलों मे परिणत हो जाती हैं।

भाषाई सद्भावना केवल अवधारणा या अवधारणाओं की संवाहिका ही नही है, बल्कि यह भाव और बोध को उत्प्रेरित भी करती है। यही कारण है कि जीवित व्यक्तियों की भाषा का स्थान संकेत या चिन्ह नही ले सकते तथा कोई कुछ कहता है तो उसके पीछे उसकी क्या मंशा, उद्देश्य, लहजा या मनोभाव है, वह केवल शब्दार्थ विज्ञान और अलंकारशास्त्र से संपूर्णतया अभिव्यक्त नही हो सकता और मनुष्य को भाषा की आवश्यकता केवल अर्थ के संप्रेषण के लिए नही पड़ती, बल्कि सुनने और व्यक्ति के अस्तित्व की अभिपुष्टि के लिए भी पड़ती है ।

भाषा अनुवाद और मनुष्यता की पहचान का स्थायी संदर्भ है तथा विचार के प्रकटीकरण का माध्यम है और जनमानस को प्रभावित करने का साधन भी है । पृथ्वी एक घोंसला है, जिसमें अलग-अलग भाषा बोलने वाले निवास करते हैं और अपने जीवन यथार्थ को एक -दूसरे से अभिव्यक्त करते हैं। कोई उसे बोल कर व्यक्त करता है कोई उसे लिख कर व्यक्त करता है । लेखक भाषाई सद्भाव के द्वारा ही अपनी रचनाओं को मनोरम बनाता है ।

उल्लेखनीय है कि भाषा मानवीय सत्य की प्रतिकृति का निर्माण करती है, अनुकृति का नही। यह सिर्फ अनुभव खंडों को उनके अधिकतम सघन, व्यापक और प्रभावी रूप तक पहुंचाने का माध्यम ही हुआ करती है। मनुष्य चाहे साहित्यकार हो, अधिकारी हो, कर्मचारी हो, कम्प्यूटर प्रयोक्ता हो, कार्यपालक हो या फिर उत्पादक हो इनके अनुभव, संवेदन, सोच-विचार और चिन्तन न जाने कितनी बौद्धिक परीक्षाओं से गुजरने के पश्चात् भाषाई सद्भावना सहित कागज तक आते हैं।

भाषाई सद्भावना किसी भी रचना के लिए उसकी कृति को अलंकृत और पाठकों के लिए वह रचना को सूपाठ्या बनाती है एवं यह सद्भावना पाठक के लिए उसकी रूपरेखा को तथा क्षेत्रीयता को भी व्यक्त करता है जिससे पाठक को यह पता चलता है की लेखक की रचनात्मक शैली कैसी है तथा वह किन - किन भाषाओं के सद्भाव को अपनी रचनाओं मे समाहित किए हुए है ।

रचनाकार जब रचना करता है तब वह भाषाई सद्भावना को ध्यान मे रखकर ही अपनी भावनाओं को एक आकार देता है जिससे वह अपने पाठकों तक अपनी विचारधारा को पहुंचा सके और वह लेखक भाषा की शब्दावली भी ऐसी रखता है जोकि पाठक आसानी से पढ़ तथा समझ सके ।

आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने भाषाई सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे भाषाई सद्भावना को अपने उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे भाषाई सद्भावना जागृत हो उठती है । जिसकी पुष्टि हमने इनके उपन्यासों के माध्यम से की है।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे भाषाई सद्भावना :-

एहतेशाम जी ने भाषाई सद्भावना को अपनी रचनाओं मे बहुत ही सुंदरतम् रूप प्रदान किया है जिससे इनकी भावनाएं इनकी हर रचना मे परिलक्षित होती है । इनके उपन्यासों मे भाषाई सद्भावना के भाव पाठक को पढ़ते ही समझ मे आने लगते है इस सद्भावना की पुष्टि के लिए इनके उपन्यासों के उदहारण इस प्रकार हैं ।

- : कुछ दिन और मे व्याप्त भाषाई सद्भावना : -

" ' मैं क्या कर सकता हूँ ? इसकी फ़िक्र तो उसे होनी चाहिए । ह्वाट कैन आई डू ? इट्ज शी हू हैज टू बी केयरफुल ।'"११०

" 'तुम तो बिल्कुल रूई भरे तकिए जैसी हो रही हो । क्या बात है ? वॉट द हेल इज़ राँग ? ' राजू जाने क्यों असमंजस के क्षणों मे अंग्रेज़ी बोलते थे । वैसे भी उनकी भाषा मे अंग्रेज़ी शब्द होते थे । लेकिन जब कभी वह किसी ऐसे क्षण मे शब्दों का सहारा लेते, जहाँ स्थिति उनकी समझ से बाहर हो, वहाँ उनसे पूरे-पूरे वाक्य अंग्रेज़ी मे ही निकलते थे । सिवाय तब जब वह ग़ुस्से मे अपना आपा ही खो दें । उस समय राजू कुछ भी नही बोल सकते थे । 'अरे, फ़ॉर गाड्स सेक... कुछ बोलो न... ?' उन्होंने मेरे तक़रीबन निश्चेष्ट शरीर को हिलाते - डुलाते कहा ।"१११

" (क्लब का हर सदस्य अपना और अपने मेहमान का बिल अदा करेगा ।) मैंने किया है... एक - एक डिनर पर आठ - आठ, दस - दस हजार का बिल अकेले मैंने फुट किया है । सब कमीने उन दिनों को भूल गए... । पूछते हैं कि मैं किसका गेस्ट हूँ । ... मैं किसका गेस्ट हूँ..., '"११२

" अब ख़ैर, बख़्शीश तो क्या... । मगर सच है । बिलकुल सच । हिसाब तो रखना ही चाहिए— रियल इकानमी कंसिस्ट्स इन सेविंग्स, नॉट अर्निंग्स (असल, किफ़ायत बचाने मे है, कमाने मे नही), और अपना जीवन... ' वह हँसकर कहते— 'अपना जीवन तो इसी महाकाव्य का एक पाठ हैं— कम ख़र्चो, ज्यादा जियो ।'"११३

" अम्मी का सवाल बहुत देर तक मेरे आसपास गर्दिश करता रहता था । मैं व्याकरण के बारे मे सोचने लगी थी । शब्द क्या है, वाक्य क्या होते हैं ? किस तरह आवाज़ें शब्द बन जाती है, शब्द मिलकर वाक्य और उस सब गड़बड़ मे कितना मतलब, कितना अर्थ पैदा हो जाता है । हम जो महसूस करते हैं, कह सकते हैं, जो पूछना चाहें, पूछ सकते हैं । समझा सकते हैं ? क्या सचमुच ?"११४

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के द्वारा हम यह सिद्ध कर रहे हैं कि इस रचना मे लेखक ने भाषाई सद्भावना को प्रस्तुत किया है जिसमें इन्होंने प्रश्नवाचक शब्दावली के साथ वैचारिक भाव को शब्दों के माध्यम से दर्शाया है और पाश्चात्य भाषा अंग्रेजी शब्दावली का भी भरपूर प्रयोग यहाँ रचनाकार ने किया है जिनके पुष्टि तथ्य ऊपर निरूपित किए गए हैं।

-: सूखा बरगद मे व्याप्त भाषाई सद्भावना :-

" अमी प्रवेश को समझाने लगी थी कि वह सोहेल की बात का बुरा ना माने- " यही है इसका तो, अब कहो किससे ।" उन्होंने पीड़ित स्वर मे कहा था - " ना नमाज़ पढ़े, ना रोज़ा रखे। बाप ने शह दे- देकर बिगाड़ा है। बताओ तो भला इस उम्र मे यह कुफ्र की बातें जैब देती हैं।"११५

" प्रवेश अपनी नाव- ब्याहता को लेकर वापस पाकिस्तान लौट गए और फिर जाने क्या कुछ हुआ कि बंगलादेश बनने से मात्र चंद महीने पहले उन्होंने अपना सारा बिजनेस समेटकर अमेरिका का रास्ता लिया। भारत और पाकिस्तान के बीच जिस प्रकार के हालात थे, किसी भी खबर का मिल पाना, किसी करिश्मे से कम ना था। जो कुछ भी मुझे मालूम हुआ वह सुहेल के नाम परवेज़ के ख़त से, जिसे उन्होंने रास्ते मे लंदन से पोस्ट किया था और सुहेल नही यूं ही पढ़ने को मुझे थमा दिया था बहुत अच्छी अंग्रेजी मे प्रवेश मे पाकिस्तान की राजनीतिक स्थिति को ' सम - अप' किया था।"११६

" हिल - मिलकर चिल्लाते, याद करते बच्चे- " पे दो ज़बर पन," " ज़ालिकल किताबो लराय बफीह," " पहला कलाम तैय्यब"- "इन्ना आतयना कल कौसर।" किसी दिन जब फफू के सिर का दर्द, बुखार या घबराहट कम होती, तो वह अपना सफेद दुपट्टा सिर पर लपेटे आंगन मे आ निकलती और खुद बाँस उठाकर जामुनी झडाने लगती।"११७

" सच ।" वह चीख- चीख कर हंसी और लोट-पोट हो गई-" यू थोट् चिल्ड्रेन वर मेड इन हैवन । मम्मी - डैडी साथ लेटने लगे तो बच्चे होने लगे ।" वह इतनी हँसी थी कि मुझे शर्मा जाना पड़ा।- "बट, डिडिंट यू ऐवर पीप इंटू युवर मम्मी - डेडीज़ बेडरूम ? कभी झाँक्कर नही देखा ? कमाल है यार तू तो बिल्कुल ही सती धरी है।"११८

" यह लोग, या इनके अलावा हिंदी मे लिखने वाले कितना और क्या मतलब रखते थे, कितनी अजीब बात है सुहेल और मैं दोनों ही नही जानते थे। उर्दू का तो सब कुछ देवनागरी मैं आ चुका था या आता जा रहा था। प्रेमचंद और कृशन चन्दर देखते -ही -देखते हिंदी का हिस्सा बन गए थे, मगर हमारी देवनागरी पढ़ने की आदत नही पड पाई थी। उर्दू फिर भी रवानी से पढ़ ली जाती थी और इंग्लिश तो थी ही शिक्षा का माध्यम। मगर क्योंकि देवनागरी पढ़ने मे थोड़ा ज्यादा समय और मेहनत लगती थी, इसलिए ज्यादा कुछ बिना पढ़ा ही रह गया था। " भाई अब बुड्ढे तोते क्या पड़ेंगे। ।" अब्बू ने भी एक जमाने मे देवनागरी सीखने की कोशिश के बाद लाचारी से कहा था- " हमारी तो इस टूटी-फूटी उर्दू और अंग्रेजी मे ही बीत जाएगी। फारसी तो बेचारी हो ही गई बेकार।"११९

" तुम्हारे दादा," जब अब्बू कह रहे थे तो हमारे आस - पास फैलती - सिमटती रोशनी मे उनकी आँखो मे लगा, सफेद बादबनों वाली कश्तियाँ - सी चल रही हैं - " तुम्हारे दादा पढ़े - लिखे तो थे नही, और वैसे भी, अपने सारे भाइयों मे वह सबसे छोटे थे। उनका पहनावा और पोशाक - वहीं पठानों का रिवायती शलवार - कमीज़, सिर पर बँधा कल्लाह, कंधे पर पड़ा रुमाल और पश्तो का लबो - लहजा। उर्दू भी पश्तो के लहजे मे बोलते थे, हर जुमले मे खो भाई - खो भाई लगाकर......"१२०

एक लेखक पर उसके धर्म की कुछ ना कुछ तो परछाई रहती ही है। उसी तरह एहतेशाम जी की अधिकतर सभी रचनाओं मे उर्दू भाषा के शब्द पाठक को मिल ही जाते हैं तथा इस रचना मे इन्होंने उर्दू शब्दावली के संग अंग्रेजी भाषा की शब्दावली का भी भरपूर प्रयोग किया है। जिसके प्रति इनकी भाषाई सद्भावना को देखा जा सकता है तथा इन्होंने इस रचना मे काल्पनिक भाषा का भी कहीं-कहीं पर प्रयोग किया है जिनके पुष्टि तथ्य हम प्रस्तुत कर चुके हैं।

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त भाषाई सद्भावना :-

" अंदर सौ वॉट की रौशनी मे दीवारों पर टँगे रंग- बिरंगे इश्तिहारों के बीच घिरा अपने किसी परिचित से बातें करता, डॉक्टर बैठा था, जिसमें तब कोई समानता मगरमच्छ से रही भी हो तो प्रत्यक्ष नही थी| बातचीत अँग्रेज़ी मे हो रही थी। "मैं तो इस्तीफ़ा दे चुका," वह संजीदा स्वर मे कह रहा था। | " चंद दिनों मे प्रैक्टिस जम जाएगी | वैसे भी नौकरी मैंने तनख्व़ाह के लिए नही की थी, मेरे पास काफ़ी है | ट्रांसफ़र की राजनीति से यह हकूमत मुझे नही डरा सकती |"१२१

" आपको | दवा लेने पर और भी नॉर्मल महसूस करेंगे | वैसे, आपके इनिशियल्स बड़े मज़े के है । दुनिया ए टु जेड़ होती है, आप ज़ेड टु ए है । वैरी इंटिरेस्टिंग । " कहते हुए डॉक्टर ने एक दिल खोलकर क़हक़हा लगाया था | " दो ह़फ्ते बाद रिपोर्ट्स के साथ आकर हाल सुनाएँ," उसने आलविदाई कलमा कहा था |"१२२

"जहन्नुम मे जाओ ।" बेसाख़्ता ज़मीर एहमद ख़ान के मुँह से निकाला था और तेज़ी से उठकर वह डॉक्टर के केबिन के बाहर आ गया था । चलते हुए टेबिल पर उसकी ओर खिसकाया पर्चा उठाना वह नही भूला था, जिस पर छपी क्लिनिक की जानकारी के नीचे, डॉक्टर के क़लम से अँग्रेज़ी मे लिखा था, " मिस्टर ज़ेड. ए. ख़ान, 39 वर्ष । किसी उपचार की आवश्यकता नही । " नीचे डॉक्टर मगरमच्छ के हस्ताक्षर थे ।"१२३

" फिर क्या एक और शर्मिंदगी- भरा जोखिम उठाने का साहस है उसमे ? जो जैसा मन मे बनता ओर मिटता है लिख डाले सब ? क्या उसके दिमाग़ मे सुरक्षित नक्शों, तस्वीरों, आँकड़ों, और वह जो किसी भी परिभाषा की पकड़ से परे है, की अक्कासी शब्द - भर कर पाएँगे ? वह सब जो किसी मानसिक रोग से लेकर विस्फोट के लिए बेचैन कला - ऊर्जा का भंडार- कुछ भी हो सकता है, शब्दों, एक के बाद एक लिखी गई भाषा की पंक्तियों मे सिमटकर व्यक्त हो सकता है ? बकौल कवि के, क्या मुझमे दम है ? (अँग्रेज़ी - डू आई डेयर ?)"१२४

" तो यह उपन्यास दरअसल दास्तान- ए -लापता है, जिसे दीगर 'लापताओं' से अलग शनाख्त़ करने को हम ज़मीर एहमद खा़न 'लापता' भोपाली कह सकते हैं, इसलिए भी कि न सिर्फ़ यह वक़्तन- फ़वक़्तन काल्पनिक नामों से कहानियाँ लिखता और छपवाता रहा है, शायरी के नाम पर तुकबंदी के लोभ से भी यह मुक्त नही।"१२५

" उसे देखकर अज़ीज़ ने बहुत सहज भाव से 'हाय' कहा था और फिर उन विदेशी महिलाओं से बतियाने मे व्यस्त हो गया था । वह तो हो गया था, मगर ज़मीर एहमद ख़ान को यह दृश्य किंकर्तव्यविमूढ़ कर देने को काफ़ी था । सो वह कॉंरिडॉंर मे खड़ा उस समय तक खुद के लिए अच्छन उर्फ़ अज़ीज़ के फ्री़ होने की प्रतीक्षा करने लगा था । वैसे भी तब तक वह खुद जिस दलदल मे पूरी तरह फँस चुका था उससे निकलने या कहीं आने-जाने का सोच सकने की कोई मोहलत नही थी ।"१२६

'दास्तान-ए-लापता' रचना मे एहतेशाम जी ने व्यंग्यात्मक भाव को शब्दावली के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा इन्होंने वाक्यों को प्रश्नवाचक शब्दावली का पात्रों के बीच बहुत ही सुन्दर संवाद प्रस्तुत किया है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस रचना के पात्र पाठक के समक्ष सचमुच मे वाद विवाद कर रहे हों इनके उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के माध्यम से हमने भाषाई सद्भावना की पुष्टि करने का प्रयत्न किया है।

- : बशारत मंज़िल मे व्याप्त भाषाई सद्भावना :-

" —तो फिर ? वह टोह लेने की अदाएँ छोड़कर एकदम हमदर्दी की हँसी हँस पड़ा था—तुमने पिछले दो साल से अच्छा तमाशा बना रखा है । लिखना-लिखाना छोड़कर कभी उर्दू की किताबें पढ़ने लगते हो कभी हिस्ट्री की । गाँधी साहित्य पढ़ा जा रहा है । चलो, गांधीजी के भी सवा-सौ साल का जश्न मनाना था, तो मना लिया, अब क्या आश्रम मे जाकर चरखा कातने का यह कपड़ा बुनने का इरादा है ? या यहाँ रहकर लोगों को उर्दू शायदी सिखाना चाहते हो ।"१२७

" ना ही उर्दू ज़बान को । वह रुके थे, फिर शहर पड़ा था—नही खेल ऐ दाग़, यारों से कह दो । कि आती है उर्दू, जब़ाँ, आते-आते । लोगों ने फिर दाद दी थी । —उर्दू का रस्मुल-ख़त बदलने की साज़िशें नाकाम रहेंगी, दाग़ साहब ने बात का सिलसिला जारी रखा था—उर्दू हमला करके कहीं बाहर से नही आई, हिन्दुस्तान मे ही पैदा होकर पली-बढ़ी है । फ़ारसी नही, उसे तो खत्म करके हाकिमों ने अपनी ज़बान दफ़्तरों मे शुरू कर दी और उसकी वाहवाही करनेवाले भी मिल गए । आज क़ौम के नौजवान अंग्रेज़ी तालीम हासिल करने के लिए बेताब हैं । हम नही कह सकते वह सही हैं या ग़लत । किसी मायने मे सही होंगे और किसी मे ग़लत । हम सबको उनकी मर्ज़ी करने से रोक भी नही सकते । हमारा सवाल उर्दू की बाबत है कि सियासत की बिसात पर एक ज़िन्दा जबान से खिलवाड़ कैसी ?"१२८

" बचपन से संजीदा की शिक्षा दो विभागों मे बँटी थी । पहली दिनी, जिसका सम्बन्ध कुरान, ईमान और मज़हब से था और भाषा अरबी, और दूसरी दुनियावी जिसर्में वह सारे विषय थे जिनकी ऐसी दुनिया मे ज़रूरत होती है जहाँ धार्मिक तर्क-विश्लेषणों से काम नही चल पाता । पहली शिक्षा का ज़िम्मा मिर्ज़ा जमाल बेग ने मौलवी किफ़ायतुल्लाह को सौंपा था और दूसरी व लाला धनपत राय के बेटे, नौबत के साथ जो उनका हमउम्र था, मास्टर कैलाश नारायण से प्राप्त कर रहे थे ।"१२९

"—मैं बंगाली नही जानता, उन्हें उर्दू नही आती, संजीदा ने संक्षेप मे कहना चाहा था—सारी बात अंग्रेज़ों मे हुई । वह पूछते रहे कि उर्दू मे किस तरह की शायरी हो रही है । कौन-कौन लिख रहा है । मैं बताता क्या, उनकी शख़्सियत मे वह जादू है कि उसी मे बँधकर बैठा रहा । दाग़ साहब का शेर—"किस लिए कहते को जादूगर उसे/देहलावी है दाग़ बंगाली नही", पूरे वक़्त ज़ेहन मे गूँजता रहा । चेहरा, माथा, आँखें, नाक, क़द—लगता है किसी दूसरी दुनिया का आदमी सामने हो । तहत या तरन्नुम से जो भी पढ़ते हैं, ज़बान समझे बग़ैर दिल मे उतरता लगता है । अपनी एक नज़्म पहले बंगाली मे तरन्नुम से पढ़कर सुनाई फिर उसका अंग्रेज़ी तर्जुमा तहत मे पढ़ा । ऐसा लगता है अभी थोड़ी देर पहले की बात हो ।"१३०

" अपनी मेहनत से उन्होंने मज़हबी तालीम के अलावा भी जितना सम्भव हो सकता था, पढ़ने की कोशिश की थी और उर्दू और पश्तो के अलावा किसी हद तक फ़ारसी भी समझ लेती थीं । उनके पिता कम उम्र मे अफ़ग़ानिस्तान से मज़हबी तालीम हासिल करने हिन्दुस्तान आए थे । कौसर जहाँ और उनसे छोटा एक बेटा दरअसल उनकी दूसरी पत्नी से थे, क्योंकि पहली पत्नी, शादी के दो साल बाद ही, औलाद को जन्म देने मे बच्चे सहित ख़त्म हो गई थी ।"१३१

इन पुष्टि तथ्यों के आधार पर रचनाकार कि भाषाई सद्भावना की पुष्टि की का सकती है कि इन्होंने इस रचना मे उर्दू , अंग्रेजी , बंगला भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। जिसमें इन्होंने अपने भावों को समाहित किया है।

-: पहर ढलते मे व्याप्त भाषाई सद्भावना :-

" शाहब ने अंदर दाखिल होते हुए देखा, दाहिने तरफ वाला कमरा जिसमें बिलियर्ड्स -टेबिल थी, सुना था। टेबल के ऊपर झुका हुआ बड़ा - सा शेड इस वक्त रोशन नही था। सिर सामने दीवार पर लगी ट्यूब -लाइट्स जल रही थी। टेबल के ऊपर का कपड़ा, बीच मे से शायद किसी अनाड़ी के क्यू चलाने से फट गया था, और छोटी छोटी गोल- मोल गेंदे, बेतरतीबी से बिखरी पड़ी थी। बाएँ तरफ बडे बैठक के कमरे मे, उसने नजरें दौड़ाते हुए देखा, बिल्कुल सामने जफर बेग अपने आसपास जमा लोगों से तकरीर करने के अंदाज मे कह रहा था - कुछ रिस्पांसिबिलिटी खुद आप लोगों की भी है।"१३२

" आज भी वह किसी से मिलने पर सलाम करता था, नमस्ते नही। कहीं नौजवानों मे ही हिस्ट्री पढ़ते, उसके अंदर बहुत -सा सवालिया अंधेरा छूट गया था। क्या था वह सब कुछ -मुस्लिम लीग, फज़्लें हुसैन, मुहम्मद अली जिन्नाह ? अंसारी और आजाद, या खिलाफत तहरीक -मुहम्मद अली, शौकत अली ? और अजमल खान, अंसारी, अब्दुल गफ्फार खान, किनकी नजर लग गई इनको । उर्दू और हिंदी -एक भाषा के दो रूपों की दुश्मनी ।"१३३

" कव्वाल सामने, पेटी पर रखी नोटबुक के पन्ने पलट रहा था। अभी अभी जो कव्वाली खत्म हुई थी, उसके मायने और मतलब शबनम के सिर के ऊपर से गुजर गए थे। सब फारसी ही फारसी । शायद हनीफ साहब के अब्बा, आजम साहब जिंदा होते तो जरूर समझ पाते।"१३४

एहतेशाम जी के इन पुष्टि तथ्यों से हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी भाषा तो जैसे इनकी व्यावहारिक भाषा हो क्योंकि इनकी इस रचना मे उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दावली भरपूर मात्रा मे यहाँ देखी जा सकती है तथा जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि इनका भाषाई रूप से अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा की तरफ ज्यादा रुझान रहा है।

- : मदरसा मे व्याप्त भाषाई सद्भावना :-

" फिर फ़ौरन ही शेर याद आया था—कहा हम ऊँट पर बैठें, कहा तुम ऊँट पर बैठो/कहा कोहन का डर है, कहा कोहन तो होगा । जिस ज़िन्दगी और बिगाड़ का चोली-दामन का साथ चल रहा था, उसमे झुँझलाहट की कहाँ गुंजाइश । और नाम भी तुम्हारा बुज़ुर्गों (अलीगढ़ मामू के सिवा कौन रहा होगा ।) ने ख़ूब समझकर रखा—साबिर यानी सब्र करनेवाला । तो सब्र कर, दरिया मे डाल ।"१३५

" —देखना । वह जगमग भविष्य की उस कल्पना मे खोकर कहती जिसमें फ़िल्मी दुनिया का राजपाट देवराजकुमार की प्रतीक्षा मे हाथ बाँधे खड़ा था ।—यू विल बी अ स्टार विद् युवर फ़स्ट रिलीज़ । सुपर-हिट । तुम इस्टेब्लिश हो जाओगे तो आई विल मेक माई डेब्यू । लेकिन मैं तुम्हारी ही हीरोइन बनूँगी, दूसरे किसी एक्टर कि नही । हमारी रोमांटिक जोड़ी फ़िल्म-हिस्ट्री मे याद रखी जाएगी—द एक्सक्लूसिव टूं-सम । तुम पर रोक नही, तुम दूसरी हीरोइन्स के साथ भी काम करोगे । चाहे अनाउंस बाद मे करें, लेकिन शादी हम तुम्हारी फ़िल्म लांच होते ही कर लेंगे । ठीक है ना ?"१३६

" —बेशक, ऐसा दुनिया मे कोई पहली बार नही हुआ : हाँ, हमारी ज़िन्दगी मे ज़रूर उसे सुर्ख़ स्याही—देखो । ग़लत बोल रहा था । सुर्ख़ स्याही कैसे, रोशनाई होगी । तो ज़रूर उसे सुर्ख़ रोशनाई से लिखा जाएगा... । —पुराने उर्दू शायरों, ख़ासतौर पर ग़ालिब ने फ़ारसी लफ़्ज़ 'ज़िन्हार', पनाह माँगने या ख़बरदार करने के मायने मे इस्तेमाल किया है । जैसे 'ऐ ताज़ावारिदान-ए-बिसाते हवा-ए-दिल/ज़िन्हार, ग़र तुम्हें हवसे नावो-नोश है ।' दिल की बिसात पर नए आनेवालों को ख़बरदार किया है, कि अगर ऐशो-इशरात के लालच मे इस खेल मे शामिल हुए हो, तो ग़लत समझे हो, क्योंकि यह बड़े घाटे का सौदा है... ।"१३७

" हाफ़िज़ शीराज़ी फारसी मे कहते हैं— दरमियान-ए-कअर दरिया तख़्ता बन्दम कर दई बाज भी गोई कि दामन तरमकुन, हुशियार-बाश ।"१३८

"—यस सर । अ वेरी हैप्पी शब-बरात टू यू ,सर । मैं अगर रॉन्ग हूँ तो प्लीज़ फ़ॉरगिव मी, सर । —रॉन्ग कर्मों ? —आइडिंया नही रहता सर, इतना बड़ी कंट्री है । दिवाली, दसेहरा, क्रिसमस, न्यू ईअर, ईद तो सब हैप्पी, नो कनफ्यूज़न सर । कभी रॉन्ग हो जाता है । जैसे मैं एक को— बहुत पुरानी बात है, सर—हैप्पी मुहर्रम विश कर दिया, वह बुरा मान गया । माई मिस्टेक, सर । तभी मैं बहुत केयरफुल रहता हूँ, सर ।"१३९

'मदरसा' नाम तो भाषाई सद्भावना का अपने आपमे उदाहरण है और मदरसे की बात हो रही है तो अवश्य ही इसमे उर्दू भाषा के भावों का मिलना स्वाभाविक ही है तथा इन्होंने अपनी इस रचना मे भाषाई सद्भावना को उर्दू के शायरों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जो कि भाषाई सद्भावना की पुष्टि करते हैं।

-: राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

भूमिका :- राष्ट्र के प्रति सद्भावना एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया एवं एक ऐसी भावना है जो किसी राष्ट्र अथवा देश के लोगों मे भाई - चारे अथवा राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं अपनत्व के भाव को प्रदर्शित करता है । यह भावना राष्ट्र को सशक्त एवं संगठित बनाती है । यह सद्भावना एक ऐसी सद्भावना है जो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जाती, वेशभूषा, सभ्यता एवं संस्कृति के लोगो को एक सूत्र मे पिरोए रखता है तथा अनेक विभिन्नताओं के उपरांत भी लोग परस्पर एक दूसरे के संग मेल - जोल बनाए रखते है।

हमारा भारत देश राष्ट्रीय सद्भावना की एक मिसाल है । जितनी विभिन्नताएं यहाँ उपलब्ध हैं उतनी शायद ही विश्व के किसी अन्य देश मे देखने को मिले । यहाँ अनेक जाती व सम्प्रदायों के लोग हैं जिनका रहन - सहन , खान - पान व वेश - भूषा पूर्णतया भिन्न है और ऐसा होने पर भी सभी आपसी सौहार्द बनाए हुए एक स्थान पर ही निवास करते है तथा ये सभी राष्ट्रीय सद्भावना के एक सूत्र मे पिरोए हुए हैं ।

जब तक किसी राष्ट्र के नागरिकों मे अपने राष्ट्र के प्रति सद्भावना है तब तक वह राष्ट्र भी सशक्त है । बाह्य शक्तियाँ इन परिस्थितियों मे उसकी अखंडता व सार्वभौमिकता पर प्रभाव नही डाल पाती है परन्तु जब - जब राष्ट्रीय सद्भावना खण्डित होती है तब - तब उसे अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है और यदि हम अपने ही इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो हम यही पाते हैं की जब - जब हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीय सद्भभावना कमजोर पड़ती है तब - तब बाह्य शक्तियों ने उसका लाभ उठाया है और हमें उनके आधीन रहना पड़ा है ।

इसके विपरित हमारी राष्ट्रीय अवचेतना सद्भावना से ही हमें वर्षों की दास्तां से मुक्ति मिल सकी है अतः किसी भी राष्ट्र की एकता, अखंडता व सार्वभौमकता बनाए रखने के लिए राष्ट्र के प्रति सद्भावना का होना अनिवार्य है और भारत जैसे विकासशील देश के लिए जो वर्षों तक दासत्व का शिकार रहा है वहाँ इसकी राष्ट्रीय सद्भावना की सम्पूर्ण कड़ी का मजबूत होना अति आवश्यक है ताकि भविष्य मे उसकी पुनरावृत्ति ना हो सके ।

देश मे व्याप्त साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता आदि सभी राष्ट्रीय सद्भावना के अवरोधक तत्व हैं । ये सभी अवरोधक तत्व राष्ट्र के प्रति सद्भावना की कड़ी को कमजोर बनाते हैं । इन अवरोधक तत्वों के प्रभाव से ग्रसित लोगों की मानसिकता क्षुद्र होती है जो निजी स्वार्थ के चलते स्वयं को राष्ट्र की प्रमुख धारा से अलग रखते हैं तथा अपने संपर्क मे आए अन्य लोगों को भी अलगाववाद के लिए उकसाते हैं और यही आगे चलकर लोगों मे विघटन का रूप लेता है जो फिर खून - खराबे, मार - काट व दंगों आदि मे परिवर्तित हो जाता है ।

इन विघटनकारी तत्वों की संख्या जब और अधिक होने लगती है तब ये पूर्ण अलगाव के लिए प्रयास करते हैं । हमारे देश की भौगोलिक भिन्नता जिसमें अनेक क्षेत्रों व उनमे रहने वाली अनेक जातियों व सम्प्रदायों का समावेश है ये सभी परस्पर राष्ट्रीय सद्भावना को जातीयता और साम्प्रदायिकता की विचारधारा से सद्भावना को कमजोर बनाते हैं तथा इस प्रकार ये विभिन्नताएं जो हमारी संस्कृति का गौरव हैं जब उग्र रूप धारण करती हैं तब ये हमारी एकता और अखंडता की बाधक बन जाती हैं ।

राष्ट्र के प्रति सद्भावना एक ऐसी सद्भावना है जो की एक राष्ट्र मे रहने वाले सभी लोगों को एकसूत्र मे बांधने का काम करती है इस सद्भावना मे सभी देशवासी अपने देश या राष्ट्र के प्रति एक - जुट होकर साथ - साथ चलते हैं तथा अपने देश की सुरक्षा और विकास का कार्य करते हैं ।

राष्ट्र के प्रति सद्भाव होना किसी भी नागरिक के देशभक्त होने का सबूत माना जा सकता है की वह नागरिक अपने देश के लिए कितना सोचता है तथा उसकी सुरक्षा और विकास कार्य के लिए कितना तत्पर रहता है । इतना सोचना और उस पर अपनी क्रिया दिखाना यही उसकी देश के लिए सद्भावना है । राष्ट्र के प्रति सद्भावना मानव हृदय के एक स्वाभाविक प्राकृत भाव का नाम है । जिस प्रकार एक बच्चे के हृदय मे सहज ही अपनी माँ के प्रति प्रेमपुर्ण भाव होता है वैसे ही अपनी भूमि अर्थात् जन्मभूमि के प्रति भी मानव हृदय सहज आसक्त होता है ।

मनुष्य के हृदय मे अपने देश के प्रति स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है और जन्म से ही अपनी मात्रभूमि के प्रति उसके मन मे बहुत अधिक श्रद्धा भक्ति होती है तथा आदर की भावना रहती है । मात्रभूमि के प्रति उसका असीम प्रेम उस समय और भी ऊँचाई पर पहुंच जाता है जब उसके जान से भी प्यारे देश पर धब्बा लगता है, उसके देश का स्वाभिमान आहत होता है अथवा उसके देश को कोई बुरा - भला कहता है या दबाना चाहता है । ऐसे समय मे उसका देश प्रेम प्रखर रूप मे उभर कर सामने आता है ।

यह सद्भाव कथा-साहित्य की रचनाओं मे भरपूर मिलता है अब वो चाहे आदिकाल के रचनाकार हों,भक्तिकाल के हों या रीतिकाल के और या फिर आधुनिक युग के सभी युगों के रचनाकारों की रचनाओं मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना उनकी कृतियों के द्वारा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होती है जिसको पाठक पढ़ कर उसमे समाहित राष्ट्रीय सद्भाव को वो आत्मसात करता है ।

आधुनिक युग के रचनाकारों मे कई रचनाकार हुए हैं जिन्होंने राष्ट्र के प्रति सद्भावना को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है तथा इस युग के प्रसिद्ध लेखक मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे राष्ट्रीय सद्भावना को अपने उपन्यासों मे समाहित किया है जिससे पाठक के मन मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना जागृत हो उठती है । हमने इनके उपन्यासों के द्वारा इसकी पुष्टि इस प्रकार की है।

-: मंज़ूर एहतेशाम के उपन्यासों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

कथा - साहित्य के कई रचनाकारों ने अपनी - अपनी रचनाओं मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें राष्ट्र के प्रति सद्भावना उभर कर पाठकों के सामने प्रस्तुत होती है तथा उन सभी लेखकों एवं साहित्यकारों मे से एक साहित्यकार मंज़ूर एहतेशाम जी भी हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों मे राष्ट्र के प्रति अपने सद्भाव को अपनी रचनाओं मे उकेरा है । इनके इस सद्भाव की पुष्टि के उदहारण निम्नलिखित हैं ।

-: सूखा बरगद मे व्याप्त राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

" अब्दुल रशीद खाँ, जिन्हें हमने बचपन मे देखा था और दादामियाँ कहकर पुकारते थे, मुझे अच्छी तरह याद है। छोटा कद, खशखशी दाढ़ी, शेरवानी और तुर्की टोपी पहने हुए। वह ऊंचा सुनते थे और उनसे खूब चिल्ला - चिल्लाकर बात करनी पड़ती थी। उनके बड़े लड़के, हनीफ चचा, उम्र मे लगभग अब्बू जितने ही थे। मेरे बचपन मे ही दादा मियां हनीफ चचा के साथ सऊदी अरब गए थे - हज करने के लिए, लेकिन हद से कुछ दिन पहले ही मदीने मे उनका देहांत हो गया था। मुझे याद था- उनकी मौत की खबर पाकर अब्बू दिनों गमगीन रहे थे। बाप की मौत के बाद हनीफ चचा कुछ कोशिश करके सऊदी अरब मे ही कहीं नौकर हो गए थे और बाद मे, उन्होंने अपने बीवी - बच्चों को भी वहीं बुला लिया। वह अब भी वहीं हैं और बहुत खुशहाल हैं। पुरानी, हिन्दुस्तानी पत्नी के अलावा उन्होंने एक सऊदी औरत से भी शादी कर ली और सऊदी अरब के ही शहरी हो गए । फिर भी साल- दो साल मे वह एक चक्कर हिंदुस्तान का जरूर लगते हैं और यह आकर पैसे बिल्कुल पानी की तरह खर्च करते हैं। कारण शायद बाकी खानदान के लोगों को, जिन्होंने बुरे समय मे उनकी मदद नही की, दिखाना और जलाना ज्यादा होता है।"१४०

"गुस्से मे दिल चाहता, खुद की बोटी - बोटी कर डालो। उस मुल्क से हमदर्दी कैसी, जिसे तुमने आज तक देखा ही नही ? और इस गुनाह के एहसास से भी कैसे इंकार किया जाए की हमदर्दी थी। तो क्या मैं चाहती हूँ पाकिस्तान जंग जीत जाए ? इसलिए कि वहाँ से जो आता है वह 'सलाम - आलैकुम' कहता है और हम लोगों से मिलते - जुलते कपड़े पहनता हैं ? मैं किस से लड़ रही थी, क्यों लड़ रही थी - कुछ समझ मे नही आता। क्या यह हमदर्दी उन लोगों से बदला लेने को तो नही थी जो हमें कन अंखियों से देखते हैं और हमारे आते ही बात का टॉपिक बदल देते हैं-जैसे कोई उनकी अपनी राज की बात हो और हमारे जान लेने से बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा । हम जासूस है ना पाकिस्तान के ।"१४१

"अवामी लीग.... मुजीबुर्रहमान.... यह्या खान....पीपल्स पार्टी ..... भुट्टो..... वली खान । नया - नया बना बंगलादेश । या ' इंडीकेट ',.... कामराज, नीजलिंगप्पा - चरखा कातती औरत। देश मैं हुई एक और जंग जो हमारी जिंदगी यों को फिर से एक पुराने तरह के नए इम्तिहान मे डाल गई थी.... और जिसका असर, खासकर देश के मुसलमानों के सोचने समझने और जीवन - संबंधित रवैयों पर बहुत दूर और बहुत देर तक पडना था।"१४२

" यह सूरते हाल थी घर की जब खबर मिली कि परवेज़ सपरिवार अमरीका और पाकिस्तान के बजाय अपना घर यहाँ बनाएँगे। वैसे यह खबर इतनी बार उड़ चुकी थी कि पहले मुझे विश्वास नही हुआ। लगा, कुछ दिन तक उनके आने की उम्मीद बांधते ख़त और तारीखें सुनने को मिलेंगी और उसके बाद, हमेंशा की तरह, पता चलेगा कि अभी आना पोस्टपोन हो गया है। ऐसा नही हुआ । परवेज़ की पहले पाकिस्तान पहुंचने की खबर मिली जिससे किसी हद तक यकीन हुआ कि वह शायद भारत भी आएँ । इसके कुछ समय बाद पता चला कि इस तारीख को वह यहाँ पहुँच रहे हैं। ऐसा नही कि मेरे मन मे उनके आने को लेकर किसी प्रकार का उत्साह या मिलने की खुशी हो । बस, एक आतंक बना हुआ था कि जब सुहेल और परवेज़ मिलेंगे तो क्या होगा।"१४३

" उस शाम और उसमे हुई बात चीत को बार - बार मैं अपने दिमाग मे दोहराती हूँ - खुद अपने हिसाब से किसी नतीजे तक पहुंचने के लिए । परवेज़ की निष्ठा और विश्वास को कि " मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान, खासतौर पर पाकिस्तान या दूसरे इस्लामी देशों के मुकाबले कहीं बेहतरीन घर है, क्योंकि यहाँ मज़हबी कठमुल्लाईयत नही और भविष्य मे मार्क्सवादी विचारधारा यहाँ की ज़िंदगी पर लागू करके, उसके सच और झूठ को समझने की कोशिश करती हूँ।"१४४

मंज़ूर एहतेशाम जी ने अपने समय मे ऐसी परिस्थिति को झेला तथा मेहसूस किया है जो कि अपने आप मे बहुत ही हृदय विदारक घटना थी वो घटना थी भारत का विभाजन। इनका जन्म आज़ादी के एक वर्ष बाद हुआ जो समय लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करने का माना जाता है। उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को दर्शाया गया है । जिन लोगों ने अपनी मातृ भूमि को छोड़ा वो आज भी अपने राष्ट्र के प्रति सद्भाव रखते हैं।

- : दास्तान-ए-लापता मे व्याप्त राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

" पिक - अप मोटरसाइकिलें और स्कूटर ले चुके हैं और उनके साथ दौड़ रही हैं सुंदर, किफ़ायती और स्वदेशी मारूतियाँ । जी हाँ, देश की उसी प्रगति - उन्नति के पथ पर । खूब चौड़ा और चिकना, बिजली की रफ़्तार से बनाया गया ' रिकांडो पथ ' थर्ड वर्ल्ड या तीसरी दुनिया आज आपको अपना चौधरी मानती हैं । थर्ड वर्ल्ड, एक ऐसे युग मे जबकि देश की रेलगाड़ियों तक से थर्ड क्लास तक ख़त्म किया जा चुका है । ऊपर से सारा ज़ोर है ' सारे जहाँ से अच्छा ' पर । सोच के तलघर से जब वह ' सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा ' गुनगुनाता वापस लौटा था तो राहत किसी गुफ़ा - सा मुँह खोले क़हर ढाती नज़रों से उसे घूर रही थी ।"१४५

" सन् 1857 की बग़ावत या जंगे - आज़ादी की पहली लड़ाई के सौ साल बाद या आज़ादी के तेरह - चौदह साल बाद तक ख़ानदान के बुजुर्गों की अँग्रेज़ियत के प्रतीकों से नफ़रत इतनी शदीद मगर इतनी ही सतही थी । घृणा और मोह के बीच जाने किन - किन परीक्षाओं से गुज़रता वर्तमान अपनी सूरत - शक्ल ग्रहण कर रहा था ।"१४६

" ऐसे क्षण और लोग भी इतिहास ही मे शामिल होते हैं और उनकी सोच को भी सारे लेखे- जोखे मे उसका वाजिब मक़ाम हासिल होता है। तो पंजाब और कश्मीर हो, असम - समझौता, रामजन्म भूमि- बाबरी मस्जिद विवाद ओर देश के लिए समान पर्सनल - लॉ की माँग और ज़रूरत और उसका विरोध हो, या श्रीलंका मे आतंक का बोलबाला और अफ़ग़ानिस्तान हकूमत के ख़िलाफ़ मुजाहिदीन द्वारा चलाया जा रहा अभियान या और आगे बढ़ें तो ईरान और इराक़ के बीच चल रहा कभी न ख़त्म होता युद्ध, तबाह और बरबाद होता लिबनान हो या इसराईल और फ़लस्तीनियों का झगड़ा- लगता है यह सब किसी एक ही आँधी मे सिर - जड़ से हिले दरख़्त हैं, और इनसानों को इन सारी मौसमी तब्दीलियों के साथ - साथ इसी ज़मीन पर और इसी आसमान के नीचे जीते रहना है।"१४७

" यार ज़मीर, यह तो बड़ी गड़बड़ है। चलो साथ देने के लिए तुम सोडा ही पियो। लो, चीयर्स ।" पहला घूँट लेने और उसके हलक़ के नीचे उतरने के बीच चंद क्षणों का वह अंतराल था जो उम्र गुज़रने के साथ-साथ सोच के हज़ारहा वर्ग- मीटर पर फ़ैलता गया है। लगभग उसी मूर्खतापूर्ण एहसास के अनुभव से मिलता-जुलता एक एहसास जो एक बार ज़मीर एहमद ख़ान को भारत - पाकिस्तान की सीमा हुसैनीवाला चेक- पोस्ट पर जाकर हुआ था। इधर कुछ फ़ौजी, कुछ तमाशाई और तिरंगा झंडा था और उसके आगे कुछ ख़ाली जगह, नोमेन्स लैंड। इस ख़ाली जगह के दूसरी तरफ़ कुछ दूसरे फ़ौजी तमाशाई और चाँद - तारेवाला हरा झंडा । ख़ाली नोमेन्स- लैंड को दिलचस्पी से देखते हुए वह सोचता रहा था कि क्या अगर वह पैदल चलता हुआ उस फ़ासले को तय करे तो कलाई पर बँधी घड़ी की सुइयाँ आप-ही-आप उस आधे घंटे के अंतर को फलाँग जाएँगी जो दोनों देशों के स्टैंडर्ड - टाइम्स के बीच है ?"१४८

"खुदा मालूम इन्हें कब क़रार आएगा ।" अम्माँ ने अलीगढ़ की रुदाद सुनने के बाद निराशा और उदासी मे डूबे स्वर मे कहा था । "पाकिस्तान बन गया तो भी चैन नही । किसी को पंजाबी सूबा चाहिए, कोई हिंदी के ख़िलाफ़ अपनी जान तक दे देने को तुला है, किसी का नारा हिंदी-हिंदू-हिन्दुस्तान है । चीन आया और सिर मूड़कर चला गया -इसका मातम मुल्क ने नेहरू के ज़िम्मे छोड़ दिया । होगा क्या यहाँ के लोगों का ?।"१४९

इनके इस साहित्य की पंक्तियों मे पाठक को राष्ट्रीय सद्भावना का संदेश प्राप्त होता है तथा इसमे चीन, पाकिस्तान, हिंदुस्तान की राष्ट्रीय सद्भावना को प्रस्तुत किया गया है तथा यहाँ एहतेशाम जी ने भारत विभाजन की स्थिति को भी मोहम्मद अली जिन्ना के द्वारा दर्शाया है। ये सभी इस रचना के ऐसे रोचक तथ्य हैं जो की प्रत्येक तथ्य अपने आपमे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को अपने आप मे संजोए हुए है।

-: बशारत मंज़िल मे व्याप्त राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

" सब तरफ़ देश की स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्षगाँठ मनाने की तैयारीयाँ थीं । 15 अगस्त,1997 इस अर्थ मे नया महत्त्व ग्रहण कर चुका था कि उससे ठीक पचास साल पहले, यानी 15 अगस्त, 1947 को हिन्दुस्तान ने अंग्रेज़ों की गुलामी से छुटकारा पाया था । आज़ादी की प्रक्रिया से गुज़रते हुए देश को बँटवारे का सदमा भी सहना पड़ा था । वह सदमा, बहरहाल, देश की आज़ादी की खुशी के सामने बौना था, और पचास साल बाद तो उसे अपनी आँखो से देखनेवालों और उसका प्रभाव अपने जीवन पर सीधा-सीधा महसूस करनेवालों की भी बड़ी संख्या खत्म हो चुकी थी । —तुम नही लिख रहे कुछ, दोस्त ने उस शाम मुझसे सवाल किया था—देश की आज़ादी की पचासवीं सालगिरह को लेकर ?"१५०

" मगर यह सब आगे की बातें हैं, काफ़ी आगे की । अभी पहला विश्वयुद्ध आँखों से ओझल है । महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका मे वकालत करते हुए इंसानों के अधिकार के लिए लड़ रहे हैं । कांग्रेस है मगर उसकी गतिविधियों मे तेज़ी नही आई है । मुस्लिम लीग बनी नही है । मुम्मद अली जिन्नाह कांग्रेस के एक महत्वपूर्ण मुसलमान कार्यकर्ता है । मिर्ज़ा जमाल बेग ज्यों-ज्यों बूढ़े हो रहे हैं बीती ज़िन्दगी की ओर लौटते जा रहे हैं । वह अकेले बुदबुदाते हैं जिसे सिर्फ़ जीवनलाल सुन पाता है । शाम को उनके दोस्त शोहरत राय के बेटे, धनपत मिर्ज़ा के पास आ बैठते हैं और रूमी की मनसवी उन्हें तरन्नुम से पढ़कर सुनाते हैं, उनके साथ शतरंज खेलते हैं और बारहा सुनी बातों को नए सिरे से सुनने का अभिनय करते हैं ।"१५१

" देश मे राजनीतिक गतिविधियाँ गतिशील होती गई थीं । वायसराय कर्ज़न ने बंगाल का बँटवारा कर दिया था । ऐसा मुख्यत: इसलिए किया गया था कि कांग्रेस पार्टी अंग्रेज़ो और गिनती के पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों के बीच एक पुल से तब्दील होकर एक राष्ट्रवादी पार्टी बन गई थी । अंग्रेज़ शासकों के पास हिन्दू और मुसलमान के बीच एकता न बनने देने का एक उपाय था कि वह प्रचारित और प्रमाणित करें कि कांग्रेस एक हिन्दूवादी पार्टी है और उसे मुसलमानों के भले से कुछ लेना-देना नही । मुसलमानों का भला चाहनेवाले दरअसल अंग्रेज़ थे, यह साबित करने के लिए कर्ज़न ने उनके साथ 'इंसाफ़' करते हुए बंगाल का विभाजन कर दिया था । इस विभाजन के विरोध मे आन्दोलन शुरू हो गए थे, जो शुरू मे बंगाल तक ही सीमित रहे थे और उनकी उथल-पुथल का अन्दाज़ा पूरी तरह दिल्ली या अलीगढ़ जैसी जगहों पर नही लगाया जा सका था । सन् 1857 के बाद अंग्रेज़ों ने कलकत्ते को राजधानी ज़रूर बनाया था लेकिन दिल्ली की केन्द्रीयता को अनदेखा नही कर सके थे और अभी तक दो शाही दरबार दिल्ली मे लग चुके थे और एक निकट भविष्य मे लगनेवाला था । इसके बावजूद आम तौर पर दिल्लीवासी राजनीति से कटे हुए थे । ख़ासकर मुसलमान जो अभी भी सन् 1857 की याद से सहमें हुए थे जब आज़ादी की लड़ाई या ग़दर की

क़ीमत उन्हें अपनी जान और माल से अदा करनी पड़ी थी । अलीगढ़ मे इस एहसास के बावजूद कि हिन्दुस्तान मे मुसलमानों से दोस्ती के नाटक के साथ अंग्रेज़ दुनिया मे हर जगह उनसे दुश्मनी का सलूक कर रहे हैं, ज़्यादातर मुसलमान विद्यार्थी बंगाल के बँटवारे से खुश थे । वह नही समझ पा रहे थे कि बंगाल के कुछ मुसलमान इस बँटवारे के ख़िलाफ़ क्यों थे । उनका भी यही ख़्याल था कि सन् 1857 के बाद अंग्रेज़ों ने पहली बार मुसलमानों के साथ इंसाफ़ किया था ।"१५२

" कांग्रेस का विभाजन, सूरज अधिवेशन, मिंटो-मॉर्ले सुधार, सन् 1911 का दिल्ली का ऐतिहासिक शाही दरबार जिसमें बादशाह जॉर्ज पंचम और मलिका मेरी ने अध्यक्षता की, और जिसमें बंगाल के विभाजन को निरस्त करने और अंग्रेज़ी शासन की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली बदलने की घोषणा की गई, त्रिपोली की लड़ाई और बालकन युद्ध, तुर्की ख़िलाफ़त का धारावाहिक विघटन और मुसलमान देशों मे राष्ट्रीयता का बड़े स्तर पर उदय, डॉक्टर अंसारी और उनका मेडिकल मिशन 'हिलाले अहमर' (रेड क्रिसेंट), जो सारे हिंदुस्तान मे जमा किए गए चन्दे के साथ तुर्की की मदद को गया और जिसका स्वागत देश के विभिन्न शहरों मे किया गया, वायसराय हार्डिंग को जान से मारने के लिए दिल्ली मे बम से किया गया हमला और पहला विश्वयुद्ध : आए दिन नई घटनाएँ हो रही थीं और समीकरण बन और बिगड़ रहे थे ।"१५३

" मुस्लिम लीग लोगों को कांग्रेस का मेम्बर बनने से रोकती थोड़ी है । "स्वराज्य मेरा पैदाइशी हक़ है और मैं इसे हासिल करके रहूँगा ।" यह तिलक साहब ने फ़रमाया और उनके साथ और सबसे आगे बिपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय थे । वह स्वराज्य क्या सिर्फ़ इस मुल्क के हिन्दू का होगा, यह सोचने पर मजबूर किया तिलक के मज़हबी कट्टरपन और मुसलमानों को परदेसी समझने के रवैए ने, और मुसलमानों को उकसाया अंग्रेज़ों के दिल मे अपने लिए गुंजाइश का ख़ाना तलाश करने के लिए । तिलक का वह नारा हवा मे ही घुलकर रह गया । आपके उस ग़रीब आदमी के कानों तक तो पहुँच भी नही पाया जिसकी बात आप कर रहे हैं ।"१५४

मंज़ूर एहतेशाम जी ने 'बशारत मंज़िल' मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को भी समाहित किया है इन पुष्टि तथ्यों के आधार पर हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें रचनाकार ने स्वतंत्रता की खुशी को दर्शाया है और हिंदुस्तान के विकास को गति प्रदान करने की भावना को भी समाहित किया है।

-: पहर ढलते मे व्याप्त राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

" उसे इतना याद था कि गर्म कपड़े ना पहन्ने का फैसला अपनी नौजवानी मैं उसने बुनियादी तौर पर इसलिए किया था कि उसके पास पहनने को बहुत सारे गर्म कपड़े नही होते थे। कम कीमत सेकंड-हैंड कपड़े जिनके अस्तरों पर इंग्लैंड या यूरोप के दूसरे मुल्कों की मोहरे लगी होती थीं, उसके दिल मे नफरत पैदा करते थे। गर्म कपड़े ना पहने का फैसला वह बीज साबित हुआ था, जिसके सहारे उसमे फैसले की कूव्वत के पौधे ने जनम लिया था, और धीरे-धीरे बढ़ता गया था।"१५५

इस पुष्टि तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि एहतेशाम जी की इस रचना मे राष्ट्रीय सद्भावना विद्यमान है। जिसर्में कपड़ों पर अन्य देश की मोहरों का लगा होना तथा मुख्य पात्र का उन कपड़ों मे रुचि ना रखना अर्थात् उनको नापसंद करना अपने देश के प्रति देशभक्ति तथा सद्भावना को दर्शाता है।

-: मदरसा मे व्याप्त राष्ट्र के प्रति सद्भावना :-

" बिना किसी विमर्श की तयशुदा जुमलेबाजी मे फंसे इस उपन्यास मे एक जगह अमजद के साथ बातचीत मे साबिर का यह कहना कि "मेरी हैसियत, इस चालीस साल के आ.जाद मुल्क से कम नही. हर सफलता, समस्या, विरोधाभास जिससे देश दो चार है, आंखें हैं तो मुझ्मे प्रत्यक्ष दिखेंगे. मैं देश की स्वतंत्रता का स्वरूप हूँ. मेरी शिक्षा भले ही न हो पाई लेकिन अपने जीवन मे जो कुछ हूँ तुम्हारे लिए मदरसे से कम नही."१५६ जय प्रकाश पाण्डेय,नई दिल्ली ३/४/२०१९ आजादी की फलश्रुति के इस रूपक मे ही इस उपन्यास की महिमा छिपी है जिसर्में राष्ट्रीय प्रेम की भावना हमें प्रत्यक्ष रूप इस रचना को पढ़ते हुए प्राप्त हुई है।

अन्य उपन्यासों मे सद्भावना

मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों मे सद्भावना की पुष्टि करने के साथ - साथ अन्य उपन्यासों मे भी हमने सद्भावनाओं को पुष्टि तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो की अपने समय की सुप्रसिद्ध रचनाएं रही हैं तथा ये पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक, भाषाई, तथा राष्ट्र के प्रति सद्भावना को अपने आपमे संजोए हुए है।

अन्य उपन्यासों मे पारिवारिक सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने पारिवारिक सद्भावना को समाहित किया है जिसमें से कुछ पारिवारिक सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

पारिवारिक सद्भावना -:1:- " उसने अपने टीन के बक्से मे से ढूँढ - ढूँढ कर थोड़ा - थोड़ा रुपया निकलना प्रारम्भ किया। पच्चीस बरसों से कलाइयों पर सोने की दो चूड़ियाँ पहने थी। चूड़ियां घिसकर तार की तरह पतली हो गई थीं। पूरणदेई ने यह चूड़ियाँ भी बेच दी थीं, पर फिर भी पूरा नही पड़ रहा था। आँसू आ जाते थे। तारा के सामने हाथ जोड़कर बोली, ' बेटी, कफन के लिए भी कुछ नही रखा है। अब बहिन का कारज विवाह देना तेरे ही हाथ है।"[१५७]

यशपाल जी के उपन्यास 'झूठा सच' : भाग -1 की उपर्युक्त पंक्तियों मे एक परिवार के ऊपर आई हुई समस्याओं को उजागर किया गया है। जिसे हल करने के लिए पूर्णदेई अपनी बेटी तारा से प्रार्थना करती है ताकि उसकी बहिन के विवाह का कारज आछे से हो जाए। इस आधार पर ये पंक्तियाँ पारिवारिक सद्भावना की पुष्टि करते हुए प्रतीत होती हैं।

पारिवारिक सद्भावना -:2:- " मैने जाना था कि मैं सुंदरी हूँ इसका गर्व मुझे था लेकिन पति मुझे सामने बिठाकर बिना कुछ बोले लगातार कई मिनट तक मुग्ध दृष्टि से निहारते रह जाते थे। अब मैने मन ही मन मान लिया कि मैं असामान्य रूप से रूपसी हूँ।"[१५८]

जैनेन्द्र कुमार जी के उपन्यास ' सुखदा ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें पति पत्नी के गृहस्त जीवन की झलक दिखलाई पड़ती है। इन पंक्तियों मे पति अपनी पत्नी को देख कर मुग्ध हो जाता है तथा इस कारण पत्नी अपने आपको रूपसी मानने लगती है क्योंकि एक पत्नी के लिए उसका पति ही सब कुछ होता है उसके मन को पत्नी का स्वरूप भा जाए इससे बेहतर कोई सुख नही एक पत्नी के लिए। जैनेन्द्र जी की इन पंक्तियों मे हमें पारिवारिक सद्भावना के पुष्टि तथ्य प्राप्त हुए हैं।

पारिवारिक सद्भावना -:3:- ताहिर अली इन पंक्तियों के द्वारा पारिवारिक सद्भाव को व्यक्त करता है कि - " मेरी आमदनी मेरे बालबच्चों की परवरिश के लिए काफी थी मैने जान दी खानदान के लिए। अब्बा ने मेरे सिर जो बोझ रख दिया था, वही मेरी तबाही का जबाब हुआ।"[१५९]

उपन्यासों के सम्राट प्रेमचंद जी के उपन्यास ' रंगभूमि ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे ताहिर अली के द्वारा उसके परिवार के प्रति कर्तव्य को दर्शाया गया है जिसमें वह अपने अब्बा से ख़फ़ा है तथा अपनी तबाही का कारण उनको मानता है। यहाँ परिवार मे द्वेष भाव को प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत करने का बहुत ही सफल प्रयास किया है। प्रेमचंद जी की इन पंक्तियों मे हमें पारिवारिक सद्भावना के पुष्टि तथ्य प्राप्त हुए है।

पारिवारिक सद्भावना -:4:- पारिवारिक सद्भाव की पुष्टि करती हुई कुछ पंक्तियाँ ये हैं जिसमें नर्गिस के पिता अपनी पुत्री को तसल्ली देते हुए कहते हैं की - " तू ना रो - तू ना रो बेटी । रोना मुझे चाहिए । गलत रास्ते पर मैं हूँ मैं आज से नही तेरी पैदाइश के पहले से ही सोच रहा हूँ कि बुतखाने के पर्दे मे काबा नज़र आता है। इसमे तेरा कोई कसूर नही। तू मेरे दिल की तस्वीर ही तो है । इसमे तेरा कोई कसूर नही। "[१६०]

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र जी के उपन्यास ' चन्द हसीनों के ख़ुतूत ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे एक पिता का अपनी पुत्री के लिए सद्भाव को दर्शाया गया है जिसमें पिता अपने ऊपर सभी इल्ज़ाम लेता है और वह अपनी पुत्री को दिलासा देता है कि इसमे उसका कोई कसूर नही सारा कसूर उसका है उसने अपनी पुत्री को बुतखाने के पर्दे मे काबा की झूठी बात से अवगत कराया था।

अन्य उपन्यासों मे सामाजिक सद्भाव

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने पारिवारिक सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ सामाजिक सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

सामाजिक सद्भाव-:1:- " क्या मुसलमान हमारे साथ मिल-जुलकर नही रह सकते। मेरे दोस्तों और साथियों मे सभी तरह के लोग शामिल हैं। हमने कभी यह महसूस नही किया कि हम अलग-अलग धर्म के माननेवाले हैं। "[१६१]

बलवंत सिंह जी के उपन्यास ' काले कोस ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे समाज मे रह रहे सभी धर्मों के लोगों मे एकता को दर्शाया गया है। यहाँ एक हिन्दू पात्र अपने संगी - साथियों के बारे मे बताता हुआ कहता है की मेरे मित्र सभी धर्मों मे हैं और हम सब मे आपसी सद्भाव हमेंशा बना हुआ है तो क्या मुसलमान हमारे मित्र नही हो सकते इस भाव मे हमें सामाजिक सद्भावना पूर्ण रूप से प्राप्त होती है जो की समाज मे सभी लोगों को एक समान समझते हैं।

सामाजिक सद्भाव-:2:- "....... हम तुम्हारे इस दु:ख मे बराबर के शरीक़ हैं। हो सकता है कि तुम लोगों ने भी मौजूदा हालात पर आपस मे सलाह-मशविरा किया हो...... चारगाँव के मुसलमान अपने सिख भाइयों के साथ हैं। "[१६२]

बलवंत सिंह जी के उपन्यास ' काले कोस ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे समाज मे रह रहे सभी धर्मों मे एकता को दर्शाया गया है। एक हिन्दू पात्र अपने संगी - साथियों के बारे मे बताता हुआ कहता है की मेरे मित्रों मे सभी तरह के लोग हैं फिर वो चाहे सिख धर्म हो या ईसाई फिर भी हम सब मे आपसी सद्भाव बना हुआ है इस आधार पर तो क्या मुसलमान हमारे मित्र नही हो सकते इस भाव मे हमें सामाजिक सद्भावना का सम्पूर्ण भाव पाठक को प्राप्त हो जाता है।

सामाजिक सद्भाव-:3:- " जब हिंदुओं की बस्ती से ताजिये गुजरते थे , तो उन पर लोग गुलाब-जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोदी मे उठाए ताजियों के नीचे से गुजरती थीं। और दौड़ - दौड़कर फेंके हुए मखाने बीनकर श्रद्धा से आँचल के खूट मे बाँध लेती थी। जब रामलीला का विमान उठता था, तो मुसलमान औरतें दरवाजों के चिक या बोरों के पर्दे उलटकर मूर्तियों के श्रृंगार की तारीफ करती थीं और उनके बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए आया करते थे- 'बोल राजा रामचंद्र की जै' ।"[१६३]

कमलेश्वर जी के उपन्यास ' लौटे हुए मुसाफिर ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सामाजिक सद्भावना का संस्कृति के मेल-जोल से बड़ा ही सुंदरतम् चित्र प्रस्तुत किया गया है। जिसमें समाज मे रह रहे विभिन्न धर्मों के लोगों का एक दूसरे के त्योहारों मे शामिल होना एवं उनके रीति-रिवाजों को अपनाना यह सामाजिक सद्भावना का बहुत ही सटीक उदाहरण है।

<u>सामाजिक सद्भाव-:4:-</u>" उस समय न पाकिस्तान बना था, न हिन्दू - मुस्लिम झगड़े खड़े हुए थे। दिल्ली मे ज़फर, ग़ालिब, जौक और मीर के कलाम गली - गली घूमते रहते थे।...... हिन्दू पक्के हिन्दू थे, और मुसलमान पक्के मुसलमान। परंतु इससे उनके आपसी भाईचारे मे अंतर न पड़ता था। परस्पर एक दूसरे के घर आना-जाना खाना - पीना होता था।"[१६४]

चतुरसेन शास्त्री जी के उपन्यास ' धर्मपुत्र ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें समाज मे रह रहे सभी धर्मों मे एकता प्राप्त हुई है। जिसमें बटवारे से पूर्व हिन्दू - मुस्लिम अपने-अपने धर्मों मे कट्टरता तो रखते थे परंतु एक दूसरे से द्वेष नही रखते थे अक्सर एक दूसरे के घर आना - जाना तथा खाना - पीना हुआ करता था। इस आधार पर हमें यहाँ सामाजिक सद्भावना की पुष्टि हो जाती है।

<u>सामाजिक सद्भाव-:5:-</u>" स्वर्ण जातियों मे ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार और अहीर जातियों के नवयुवक परस्पर मिलकर रहते हैं और शोषण का विरोध करते हैं। जीवनाथ, सरजुग महतो, जैकिशुन यादव, लक्ष्मण सिंह, और सुसरी झा, ये विभिन्न जातियों के ऐसे तरुण हैं, जो एकरूप होकर गाँव का कल्याण चिंतन करते हैं। "[१६५]

नागार्जुन जी के उपन्यास ' बाबा बटेसरनाथ ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सामाजिक सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप मे दर्शाया गया है यहाँ सभी सवर्ण जातियों का अन्य छोटी जातियों के साथ सद्भाव को प्रस्तुत किया गया है जो कि एक दूसरे मे एकरूप होकर गाँव का कल्याण करने की सोच रहे हैं।

अन्य उपन्यासों मे धार्मिक सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने धार्मिक सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ धार्मिक सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

धार्मिक सद्भावना-:1:-

" अल्ला हो अकबर ।

मुस्लिम लीग जिंदाबाद ।

हिन्दू -मुस्लिम एक हो ।

खिजर मिनिस्ट्री मुर्दाबाद ।

सल्तनशाही मुरदाबाद ।

हिन्दुस्तान जिंदाबाद ।

पाकिस्तान जिंदाबाद ।

जन्हुरी मिनिस्ट्री कायम हो ।

हके खुदइखत्यारी (आत्मनिर्णय का अधिकार)मिले ।

दुनिया के मजदूर एक हो ।"[१६६]

उपर्युक्त पंक्तियों मे यशपाल जी द्वारा रचित उपन्यास 'झूठा सच' के भाग -१ के वतन और देश की इन पंक्तियों मे हिन्दू-मुस्लिम के बीच धार्मिक सद्भावना को व्यक्त किया गया है जिसमें हिन्दू -मुस्लिम को एक करने के नारे लगाए गए हैं तथा दोनों धर्मों के लोगों के बीच मे धार्मिक सद्भावना को उजागर किया गया है। एवं सभी धर्मों को बराबर महत्व दिया गया है जिसके द्वारा यहाँ धार्मिक सद्भावना की पुष्टि की गई है।

धार्मिक सद्भावना-:2:- " मनुष्यों के देश, धर्मों के देश बन गए ? रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था रब्ब के बंदों ने अपने अहम से उसे दो कर दिया। "[१६७]

यशपाल जी के उपन्यास 'झूठा सच' भाग -१ के वतन और देश की पंक्तियों मे रब के द्वारा बनाई हुई दुनिया का जिक्र किया गया है जिसमें धर्म, मनुष्य, जात - पात सब बराबर हैं इसी आधार पर धार्मिक सद्भावना को यशपाल जी ने व्यक्त किया है। यह पंक्ति धार्मिक सद्भावना की पुष्टि करती है।

धार्मिक सद्भावना-:3:- ये लोग मोहर्रम को इतना अधिक मान देते हैं कि सैकड़ों वर्षों से गंगौली मे रहते हुए भी आज तक उन्होंने किसी मजीद की नीव नही रखी। वज़ीर मियां फरमाते हैं कि- " वाकई बड़े शर्म की बात है की हम लोग इस गाँव के ज़मीदार हैं और इस गाँव मे शियों की एक भी मस्जिद नही......"[१६८]

राही मासूम रज़ा जी के उपन्यास 'आधा गाँव' की इन पंक्तियों मे वज़ीर मियाँ जी के द्वारा अपने धर्म (मुस्लिम) सियों की एक भी मस्जिद ना होने पर अफसोस को दर्शाया गया है जबकि वे गाँव के जमींदार हैं फिर भी सियों की एक भी मस्ज़िद नही बना सके। रज़ा जी की इन पंक्तियों मे हमें धार्मिक सद्भावना के पुष्टि तथ्य प्राप्त हुए हैं।

धार्मिक सद्भावना-:4:- " हिन्दू राष्ट्र ने आज अपना तीसरा नेत्र खोल है.....वह सब इसमे भस्म होगा जो विदेशी है; हम वीरों की संतान है.... हम शिवजी, महाराणा प्रताप और लक्ष्मीबाई की संतान है....वीरता मे शक्ति है तथा शक्ति मे है प्रभुता का स्त्रोत । वीरभोग्या वसुंधरा....और वीर वही है, जो हिन्दू है।" [१६९]

कमलेश्वर जी के उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' की उपर्युक्त पंक्तियों मे साफ - साफ हमें हिन्दू धर्म की प्रामाणिकता देखने को मिल जाती है जिसमें एक राष्ट्र को सीधे ही हिन्दू राष्ट्र का नाम दे दिया गया है तथा वीरता की उपाधि भी केवल हिंदुओं को देदी गई है। कमलेश्वर जी की इन पंक्तियों मे हमें धार्मिक सद्भावना के पुष्टि तथ्य प्राप्त हुए हैं।

धार्मिक सद्भावना-:5:- " मैं निष्ठावान हिन्दू हूँ। मुझे नित्यकर्म, पूजा करने की सुविधा दी जानी चाहिये। मेरा जीवन भी स्वतंत्र होना चाहिये। मैं जिस -तिस के हाथ का छुआ भोजन ना करूँगा। जिन बातों से मेरी धार्मिक भावना को ठेस पहुंचेगी उनके विरुद्ध मे आमरण अनशन करूँगा। "[१७०]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के उपन्यास धर्मपुत्र की उपर्युक्त पंक्तियों मे साफ - साफ हमें हिन्दू धर्म की प्रामाणिकता देखने को मिल जाती है जिसमें एक कैदी अपनी धार्मिकता को सिद्ध करते हुए अपने धर्म की पैरवी करता है तथा हिन्दू धर्म की महत्ता को बतलाता है जिससे यहाँ हमें धार्मिक सद्भावना के भाव प्रतीत होते हैं ।

अन्य उपन्यासों मे साम्प्रदायिक सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिक सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ साम्प्रदायिक सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

साम्प्रदायिक सद्भावना-:1:- " इन सबकी वजह से लाहौर के हिन्दू सहम रहे थें, लीग का बढ़ता जाता आंदोलन जाने क्या रंग लाये । लाहौर के हिन्दू पात्र और कांग्रेसी पात्र अपनी टिप्पणियों मे सरकार को इस परिस्थिति से सावधान हो जाने की चेतावनी दे रहे थे। ' पैरोकार ' मे पूरी दो बार लिख चुका था -' साम्प्रदायिकता उत्तेजना से भरी राजनीति और साम्प्रदायिक घृणा और द्वेष का तूफान क्षितिज पर उठ रहा है। यह तूफान सार्वजनिक नागरिक जीवन का अंत कर देगा। उस समय हिन्दू - मुस्लिम इत्तेहाद के नारे याद नही रहेंगे....।"[१७]

यशपाल जी के उपन्यास 'झूठा सच' : भाग -1 की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें हिन्दू- मुस्लिम धर्म के लोगों के बीच द्वेष की भावना देखने को मिल जाती है जिसमें हिन्दू सरकार द्वारा उनके टिप्पणी पात्र मे चेतावनी का भाव है तथा हिन्दू - मुस्लिम साम्प्रदायिकता परिलक्षित हो रही है। यशपाल जी की इन पंक्तियों मे हमें इस रूप मे साम्प्रदायिक सद्भावना के पुष्टि तथ्य प्राप्त हुए है।

साम्प्रदायिक सद्भावना-:2:- " मुसलमान का दुश्मन हिन्दू नही है, मुसलमान का दुश्मन वह मुसलमान है जो दुम हिलाता हिंदुओं के पीछे - पीछे जाता है, उनके टुकड़ों पर पलता है। "[१७२]

भीष्म साहनी जी के उपन्यास 'तमस' की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें हिन्दू- मुस्लिम धर्म के लोगों के बीच द्वेष की भावना देखने को मिल रही है जिसमें मुस्लिम लोगों को भड़काया जा रहा है तथा जो हिंदुओं का मित्र है उसे अन्य मुस्लिम का दुश्मन मानने को कहा गया है जिसमें साम्प्रदायिकता का भाव हमें प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो रहा है।

साम्प्रदायिक सद्भावना-:3:- " हिंदुओं की एक लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गई । हमने देख लिया जी। सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गये....... जब हमने उसे पकड़ लिया ..... तब बारी- बारी से उसे दबोचा।.... जब मेरी बारी आई तो नीचे न हूँ, न हाँ वह हिले ही नही, मैने देखा तो लड़की मरी हुई..... मैं लाश से ही जना किए जा रहा था।"[१७३]

भीष्म साहनी जी के उपन्यास 'तमस' की उपर्युक्त पंक्तियों मे हिन्दू- मुस्लिम के बीच बहुत ही क्रूर व्यवहार को प्रस्तुत किया गया है जिसमें कई मुस्लिम लोगों द्वारा एक हिन्दू लड़की के साथ साम्प्रदायिक द्वेष के चलते उसके साथ जना करते हैं जिसके कारण उस हिन्दू लड़की की मृत्यु हो जाती है। भीष्म साहनी जी की इन पंक्तियों मे हमें इस क्रूर रूप मे साम्प्रदायिक भावना का भाव प्राप्त हुआ है।

साम्प्रदायिक सद्भावना-:4:- " तो अब कितने पाकिस्तान बनेंगे भाई ?.....खुद पाकिस्तान मे से कितने पाकिस्तान पैदा होंगे ? पंजाब के सराय की अपना सूबा माँग रहे हैं। पुराने सिंधी अपना सिन्धु देश बनाना चाहते हैं। जैसे यहाँ लोगों ने पंजाबी - उर्दू की लड़ाई छेड़ दी है, वैसे ही वहाँ सिंधी - उर्दू की लड़ाई चल रही है। और.... पख्तून अपना पख्तूनिस्तान चाहते हैं। अताउल्लाह मेगल आज़ाद बलूचिस्तान मांग रहा है। और अपने मुहाजिर भाई सिंध कराची मे अपना एक और पाकिस्तान बनाना चाहते हैं.....सुना है कि वहाँ हिंदुस्तान मे हिन्दू भी हिंदुस्तानियों से अपना हिंदुत्वादी पाकिस्तान माँग रहे हैं..... लंका मे तमिल अपनी लंका अलग करना चाहते हैं....."[१७४]

कमलेश्वर जी के उपन्यास कितने पाकिस्तान की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें साम्प्रदायिक सद्भावना इस रूप मे प्राप्त हो रही है कि इन पंक्तियों मे हिन्दू-मुस्लिम अपने - अपने लिए लड़ - मर रहे हैं मुस्लिम तो अपना अलग पकिस्तान माँग ही रहे हैं परंतु हिन्दू भी अपना अलग हिंदुत्वादी पाकिस्तान मांग रहे हैं। भाषाई भावना के आधार पर किसी को तमिल भाषा के आधार पर अलग पाकिस्तान चाहिए तो किसी को अन्य भाषा के आधार पर जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे फेल रहे हैं । भीष्म साहनी जी की इन पंक्तियों मे हमें साम्प्रदायिक सद्भावना पुष्टि हुई है।

साम्प्रदायिक सद्भावना-:5:- " मुस्लिम लीग वाले यह कहते हैं कि हिंदुस्तान मे यदि प्रज़ातंत्र राज्य हो गया तो वास्तव मे हिंदुओं का राज्य हो जाएगा। इस कारण वे चाहते हैं की पहले तो हिंदुस्तान का एक भाग पूर्ण रूप मे मुसलमानों के हाथ मे हो जाए, पश्चयात या तो धमकी देकर हिंदू भाग को डरा कर मुसलमानों के अधीन रखेंगे, नही तो हिंदू भाग को विजय कर लेंगे।"[१७५]

गुरुदत्त जी के उपन्यास 'स्वराज्यदान' की उपर्युक्त पंक्तियों मे हमें हिन्दू- मुस्लिम धर्म के लोगों के बीच द्वेष की भावना देखने को मिल जाती है जिसमें मुस्लिम लीग वाले प्रज़ातंत्र का विरोध करते हैं तथा वे अपना एक अलग मुस्लिम स्थान चाहते हैं और कम हिंदू वाले भाग को मुसलमानों के अधीन करना चाहते हैं। इस प्रकार हमें यहाँ साम्प्रदायिक सद्भावना की पुष्टि हो जाती है जिसमें मुस्लिम हिंदुओं को समाप्त करना या फिर उनको अपने आधीन बनाना चाहते हैं।

अन्य उपन्यासों मे सांस्कृतिक सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने सांस्कृतिक सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ सांस्कृतिक सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

सांस्कृतिक सद्भावना-:1:- " आज दस्तक देती हुई नई सदी मे इनका नाम है-बाज़ारवाद । यह व्यवस्था कच्चे माल की प्राप्ति और नीति नए बाज़ारों के निर्माण के बिना जी नही सकती। यातना, विषमता और अवसाद के बीच यह देते हैं कृतिम उत्सव और उल्लास। सड़ती लाशों के अम्बार पर ये छिड़कते हैं किश्चियन डियोर, शैनल और क्रिस्टल के इत्र । कटी हुई लहूलुहान गर्दनों मे ये पहनाते हैं लानविन की नेकटाईयाँ और मेजोरिक के नेकलेस। टूटी हुई कलाइयों मे ये बांधते हैं राडो और रेमण्डवील कि घड़ियां और चकनाचूर उंगलियों को ये पकड़ाते हैं मोंटब्लैंक और वाटरमैन के कलम । .... आज भी इण्डिया के हज़ारों गाँवों मे जहाँ पीने का साफ पानी नही पहुँच पाया है, वहाँ पेप्सी और कोक पहुँच चुका है...।" [१७६]

कमलेश्वर जी के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सांस्कृतिक सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप मे प्रस्तुत किया गया है इन पंक्तियों मे बाज़ारवाद की संस्कृति का उल्लेख किया गया है जिसमें हमें यह दिखलाई देता है कि बाजार मे बिकने वाली अन्य देश की प्रसिद्ध वस्तुएँ उन स्थानों तक भी पहुंच गई हैं जहाँ लोगों को पीने के लिए साफ पानी तक पर्याप्त मात्रा मे नही मिल पाता और हम पेप्सी, कॉक,मोंटब्लैंक जैसी पाश्चात्य संस्कृति को अपनाते जा रहे हैं।

सांस्कृतिक सद्भावना-:2:- " मैं अकेली नही। मैं निरसंग नही। मैं कहीं निर्जन मे नही। मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ। ... इन आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता को फिर से पनपाऊँगी.... अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्मकेंद्रिता विच्छिन्नता को दूर करके भूले भटके लोगों को अपने लोगों के पास लौटकर लाना होगा । मैं अपनी सत्ता को समाज मे विलीन कर रही हूँ.... लोक संस्कृति मूलक समाज के गठन के लिए।"[१७७]

फणीश्वर नाथ रेणु जी के उपन्यास 'जुलूस' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सांस्कृतिक सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप मे प्रस्तुत किया गया है इन पंक्तियों मे समाज का गठन करने के लिए लोक संस्कृति का बहुत महत्व है जो की सांस्कृतिक सद्भावना की पुष्टि करता है।

सांस्कृतिक सद्भावना-:3:- सुशीला विधवा उपन्यास मे भी सुशीला पर्दा प्रथा संस्कृति का समर्थन करते हुए अपने विचार प्रकट करती हुई कहती है कि- " मेरी समझ मे पर्दा प्रणाली अच्छी है जो लोग पर्दा प्रणाली की निंदा करते हैं वे भुलते हैं झक मारते हैं। पर्दे का प्रयोजन यह नही है की स्त्रियों को सात ताले मे बंद रखना चाहिए, इसका मतलब यही है कि उन्हें ऐसे कुकर्म करने का अवसर न देना चाहिए।"[१७८]

पं. लज्जाराम शर्मा जी के उपन्यास ' सुशीला विधवा ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सांस्कृतिक सद्भावना को एक अलग ही रूप प्रदान किया गया है इन पंक्तियों मे शर्मा जी ने पर्दा प्रथा की संस्कृति को दर्शाया है अर्थात् यह बतलाया है कि पर्दे मे रखने का मतलब कैद मे रखने से नही है परंतु स्त्रियों के संग कुकर्म करने वाले लोगों से बचाने के लिए है।

सांस्कृतिक सद्भावना-:4:- सांस्कृतिक सद्भाव को व्यक्त करते हुए यादव जी ने कुछ पंक्तियाँ पुष्टिगत रूप मे व्यक्त की हैं - समर की पत्नी प्रभा के घर मे पर्दा ना करने पर बहुत हंगामा मचना प्रारम्भ हो जाता है उसकी सासु माँ जी कहती हैं की - " बहू ऐसी भी बेहयाई किस काम की ? माथे पर पल्ला ले लेने मे तुम्हारा क्या जाता है ? आज तक इस घर मे घूंघट ठोड़ी से ऊपर आया ही नही। फिर बेटी और बहू मे फर्क ही क्या रह गया ?.... यों हम भी नही कहते कि पर्दा करना कोई बहुत अच्छी चीज है मगर घर मे चलता आया है।"[१७९]

राजेन्द्र यादव जी के उपन्यास ' सारा आकाश ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे सांस्कृतिक सद्भावना को एक अलग ही स्तर प्रदान किया गया है इन पंक्तियों मे यादव जी ने पर्दा प्रथा की संस्कृति को दर्शाते हुए प्रभा की सासु माँ उसे माथे पर पल्ला लेने के लिए कहती है वह मानती भी है की पर्दा करना बहुत अच्छी चीज नही है परंतु करना चाहिए क्योंकि ये उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी से चलता आ रहा है ।

अन्य उपन्यासों मे भाषाई सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने भाषाई सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ भाषाई सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

भाषाई सद्भावना-:1:- " हम ना जाए वाले हैं कहीं। जाये ऊ लोग जिन्हें हल-बैल से शरम आती है। हम तो किसान हैं, तन्नू भाई। जहाँ हमारा खेत, हमारी ज़मीन- तहाँ हम।"[१८०]

राही मासूम रज़ा जी के उपन्यास ' आधा गाँव ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे भाषाई सद्भावना को बहुत ही मनोरम रूप मे प्रस्तुत किया गया है इन पंक्तियों मे रज़ा जी ने भोजपुरी की शब्दावली का प्रयोग किया है जिसमें उत्तर प्रदेश के लहजे को हम इनके पात्रों मे देख सकते हैं। जो की भाषाई सद्भावना कि पुष्टि करते हैं।

भाषाई सद्भावना-:2:- " छिकुरिया ने फिर उनसे सवाल किया - " है बीबी, हुई पाकिस्तान केहर बनी ? " कुलसुम - " अ का जाने केहर बना रहा मटीमिला । छिकुरिया - " जउनी गाजीपुर मे बन्नत त हमहुँ देख लेते ।" "[१८१]

राही मासूम रज़ा जी के उपन्यास ' आधा गाँव ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे भाषाई सद्भावना को बहुत ही मनोरम रूप मे प्रस्तुत किया गया है इन पंक्तियों मे रज़ा जी ने भोजपुरी की शब्दावली एवं छिकुरियों के द्वारा प्रश्नवाचक शब्दावली का प्रयोग किया है जिसमें उत्तर प्रदेश की आम बोल - चाल को हम इनके पात्रों मे देख सकते हैं। जो की भाषाई सद्भावना कि पुष्टि करते हुए हमें प्रतीत हुए हैं।

भाषाई सद्भावना-:3:- इस साहित्य मे अरबी - फारसी मूल की बहुत सी शब्दावली ऐसी हैं जिनका प्रयोग तत्सम रूप मे साहित्यकार द्वारा किया गया है। उन शब्दों को सामान्यतः हिंदी की प्रचलित शब्दावली मे सम्मिलित नही किया गया है। ये पंक्तियाँ इस भाषाई सद्भाव की पुष्टि करती हुई प्रतीत होती हैं - उपन्यासकार ने लिखा है कि - " हम्माद मियाँ और जवाद मियाँ के अलावा तकरीबन तमाम मियाँ लोग उनके मक़रूज़ थे और वह किसी से तकाजा नही कर सकते थे।"[१८२] इस वाक्य मे प्रयोग किए गए ' मक़रूज ' शब्द के स्थान पर यदि 'कर्जदार' शब्द होता तो वह सामान्यतः हिंदी के अधिक अनुकूल हमें जान पड़ता।

राही मासूम रज़ा जी के उपन्यास ' आधा गाँव ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे भाषाई सद्भावना की पुष्टि अरबी - फारसी एवं तत्सम शब्दावली के माध्यम से की गई है।

भाषाई सद्भावना-:4:- कमलेश्वर जी ने कितने पाकिस्तान की कहानी, भाषा एवं शैली को अतीत अनुरागी, पुनरदीप्त, अतीत आलोचनात्मक पूर्वाभास एवं भविष्यात्मक बनाने का एक सफल प्रयास किया है जिसमें इनके भाषाई सद्भाव को देखा जा सकता है इनकी रचना की पुष्टिगत पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- " ई तो हमारे सामने वालों के, उनके बुजुर्ग रहे.... औ हम सब गांव वाले भी उनको बिजरुग मानते हैं। उन ही का मजार है ई । अब आप ही सोचें.... का मीरबाकी का मजार औ ओकी मस्जिद इतनी मामूली होय सकती है ? ई तो आग लगाय दी है गलत तारीख लिखनेवालों औ' दिल्ली के अखबारों ने... इहाँ आय के तस्वीरें उतारी औ' जाके लिख दिया - ई मीरबाकी की कबर है औ' ई ओकी बनवाई मस्जिद ।"**१८३**

कमलेश्वर जी ने अपनी रचना ' कितने पाकिस्तान ' की इन पंक्तियों मे भाषाई सद्भावना की पुष्टि की है तथा ये अपनी स्थानीय भाषा का प्रयोग करते हुए हमें यहाँ प्रतीत हुए हैं।

भाषाई सद्भावना-:5:- भाषाई सद्भावना के आधार पर शानी जी के 'काला जल' उपन्यास मे उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया गया है ये पंक्तियाँ भाषाई सद्भावना की पुष्टि करती हुई प्रतीत होती हैं -

" होम करते हाथ जल गये।"

" बून्द - बून्द से घड़ा भरता है। "

" अपना सोना ही खोटा है तो सुनार को दोष देने से क्या फायदा ? "[१८४]

अन्य उपन्यासों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना

अन्य उपन्यासों मे भी कई उपन्यासकारों ने राष्ट्र के प्रति सद्भावना को व्यक्त किया है जिसमें से कुछ राष्ट्र के प्रति सद्भाव की पुष्टि करते हुए पुष्टि तथ्य निम्नलिखित हैं :-

राष्ट्रीय सद्भावना -:1:- " यही एक पखेरू है जो उसके देश मे नही होता । या होता भी हो तो पवित्रा ने कभी नही देखा। सचमुच इस 'देश' मे कुछ भी ऐसा नही जो पवित्रा के ' देश ' मे नही था।' फिर भी.....: ' अपना ' देश फिर ' अपना ' देश ।..... पर भूमि कैसी भी हो, आखिर पर- भूमि ही है।"[१८५]

फणीश्वरनाथ रेणु जी के उपन्यास ' जुलूस ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को बहुत ही सुंदरतम् रूप मे दर्शाया गया है यहाँ रेणु जी के द्वारा पवित्रा के देश से अपने देश की तुलना की गई है तथा यह सिद्ध किया है कि अपने देश मे सब कुछ है जो कि पवित्रा के देश मे है और अपना देश फिर अपना देश है इन शब्दों मे रष्ट्रीय प्रेम का हमें एक प्रमाण मिल जाता है

राष्ट्रीय सद्भावना -:2:- " " बाबू क्या हम यहाँ नही रह सकते ? " खाजे बाबू कहते हैं - " नही छाको, तुम यहाँ के नागरिक नही हो, कानूनी तौर पर तुम यहाँ नही रह सकते।" खाजे बाबू के यह कहने पर छाको कहता है - "चाहे जेल दे दो या फांसी हम तो अपने घर को छोड़कर नही जायेगे।" "[१८६]

बदी उज्जमां जी के उपन्यास ' छाको की वापसी ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को बहुत ही उच्च स्तर प्रदान किया गया है यहाँ पर छाको के द्वारा राष्ट्रीय प्रेम को दर्शाया गया है वह अपने घर अपने देश को छोड़ कर कहीं नही जाना चाहता चाहे इसके लिए उसे जेल हो जाए या फाँसी दे दी जाए ।

राष्ट्रीय सद्भावना -:3:- जब वजीर हसन का पुत्र अली बाकर पाकिस्तान चला गया था तब उन्होंने उसका अनुकरण करने का बिल्कुल भी प्रयास नही किया अथवा उनकी भावना मे राष्ट्र के प्रति सद्भाव इन पंक्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है - " इसलिए नही कि वे पाकिस्तान के विरोधी हो गए थे, इसलिए भी नही कि हिंदुस्तान से उन्हें प्यार हो गया था बल्कि इसलिए कि हिंदुस्तान उनका घर था और घर नफरत और मोहब्बत दोनों ही से ऊंचा होता है।"[१८७]

राही मासूम रज़ा जी के उपन्यास ' ओस की बूंद ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को बहुत ही आकर्षक रूप प्रदान किया गया है यहाँ रज़ा जी के द्वारा वज़ीर हसन के अपने देश के प्रति राष्ट्रीय सद्भाव को दर्शाया गया है। उसके लिए हिंदुस्तान मे उसका घर महत्व रखता है नफरत या मुहब्बत नही।

<u>राष्ट्रीय सद्भावना -:4:-</u> 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास मे मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाने का बहुत ही हृदयग्राही प्रयास लेखक द्वारा किया गया है । जिसमें राष्ट्र प्रेम की भावना का भी भरपूर मिश्रण हमें प्राप्त होता है जोकि इन पंक्तियों से सिद्ध हो रहा है - रहमतुल्लाह निजाम के भाई इमाम को यह बताता है कि -

" पढ़लिख कर नादान मत बनो, बटवारा मुल्क का हुआ है हमारे इस गाँव का तो नही । हमारा पुश्तैनी घर, खेत, रिश्तेदारी-बिरादरी, सब कुछ तो यही है। वह तो किसी ने नही छीना ? "[१८८]

नासिरा शर्मा जी के उपन्यास ' जिंदा मुहावरे ' मे उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा राष्ट्रीय सद्भावना की हमें पुष्टि हुई है जिसमें निजाम बटवारे के ऊपर अपने विचारों को व्यक्त करता हुआ प्रतीत हो रहा है तथा रष्ट्रीय सद्भाव का पाठ लोगों को पढ़ाता हुआ हमें परिलक्षित होता है।

<u>राष्ट्रीय सद्भावना -:5:-</u> " 15 अगस्त 47 के दिन जीवनाथ के अपने घर के सामने लम्बे बांस की ध्वजा गढ़ी थी और तिरंगा झंडा फहराया था । लोगों मे दो सेर बताशे बांटे थे। परसदीपुर के किन्ही बाबू के यहाँ से हारमोनियम और तबला दुग्गी मांगकर ले आया था और दिन भर आजादी का त्योहार मनाया था। रात को दीप जलाए थे, सेर भर तिली का तेल खर्च किया था। "[१८९]

नागार्जुन जी के उपन्यास ' बाबाबटेसरनाथ ' की उपर्युक्त पंक्तियों मे राष्ट्र के प्रति सद्भावना को बहुत ही आकर्षक रूप प्रदान किया गया है यहाँ नागार्जुन जी के द्वारा इन पंक्तियों मे जीवनाथ के राष्ट्र प्रेम को दर्शाया गया है अर्थात् स्वतंत्रता दिवस के दिन अपने घर पर तिरंगा झण्डा फहरा कर और लोगों मे दो सेर बतासे बाँट कर अपने राष्ट्र प्रेम को व्यक्त करता है।

उपर्युक्त पुष्टि तथ्यों के आधार पर हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों मे हमें सद्भावनाएँ देखने को मिल जाती हैं वैसे ही अन्य कई रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं मे उपर्युक्त सद्भावनाओं का समावेश बहुत ही सुगमता पूर्वक किया है।

निष्कर्ष:- मंज़ूर एहतेशाम जी के उपन्यासों में सामाजिक सद्भावना के अध्ययन से हमे ये प्राप्त हुआ कि इन्होंने अपने सभी उपन्यासों 'कुछ दिन और', 'सूखा बरगद', 'दास्तान-ए-लापता', 'बशारत मंज़िल', 'पहर ढलते', 'मदरसा' आदि में सामाजिक सद्भावना को समाहित किया है जिसमे हम पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई तथा राष्ट्र के प्रति सद्भावना को देख सकते हैं। जिनकी कहानी हमारे हृदय मे घर कर जाती हैं और प्रत्येक रचना अपने-आप मे एक सफल रचना मानी गई है। जिससे हम सामाजिक सद्भावना को बहुत अच्छे से समझ सकते हैं।

-: संदर्भ सूची :-

१:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८

२:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११

३:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १६

४:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३०

५:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११४-११५

६:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ०९

७:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १४-१५

८:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३२-३३

९ :- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८७

१०:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९५

११:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १५-१६

१२:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २४

१३:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६६-६७

१४:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६८

१५:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०५

१६:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २८

१७:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४७

१८:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६८

१९:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८८-८९

२०:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६०

२१:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६८

२२:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २१

२३:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २६

२४:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २८

२५:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १३३-१३४

२६:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०७

२७:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १७

२८:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६३

२९:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६९

३०:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७२

३१:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २७

३२:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३२

३३:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १८५

३४:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १८७

३५:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०

३६:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७४

३७:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८८

३८:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९६

३९:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९७

४०:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४३

४१:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५३

४२:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८२

४३:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९५

४४:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९६

४५:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १२

४६:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०

४७:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६१

४८:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७८-७९

४९:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०६

५०:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २६

५१:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३४

५२:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४६

५३:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९३

५४:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०८

५५:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४४

५६:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५२

५७:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९३

५८:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११

५९:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५५

६०:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५६

६१:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६८

६२:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १६०

६३:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०७

६४:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३१

६५:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३७

६६:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४७

६७:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५८

६८:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २३

६९:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४८

७०:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५६

७१:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५८

७२:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९३

७३:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३८

७४:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४०

७५:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४१

७६:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५०

७७:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७७

७८:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २९

७९:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११२

८०:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १५८

८१:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०३

८२:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २७८

८३:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९४

८४:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३१

८५:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १२६

८६:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १५५

८७:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १९३

८८:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २१७

८९:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १४

९०:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २६

९१:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २०

९२:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७४

९३:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०५

९४:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०५

९५:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २१८

९६:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४४

९७:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६८

९८:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८८

९९:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १०८

१००:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २१

१०१:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३३

१०२:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४०

१०३:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५४

१०४:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६३

१०५:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५८

१०६:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८४

१०७:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८४

१०८:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११५

१०९:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १६९

११०:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५३

१११:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६०

११२:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७२

११३:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७८

११४:- मंज़ूर एहतेशाम,कुछ दिन और, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १३४

११५:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११

११६:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १२

११७:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १९

११८:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४६

११९:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४९

१२०:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६३

१२१:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११

१२२:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १४

१२३:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १७

१२४:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३०

१२५:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८१

१२६:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११४

१२७:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १३

१२८:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २२

१२९:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३३

१३०:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७१

१३१:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८८

१३२:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १९

१३३:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४१

१३४:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६१

१३५:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ३३

१३६:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७७-७८

१३७:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १८३-१८४

१३८:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २३०

१३९:- मंज़ूर एहतेशाम,मदरसा, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २८६

१४०:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६७

१४१:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८१

१४२:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - १२६

१४३:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २००

१४४:- मंज़ूर एहतेशाम,सूखा बरगद, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २१९

१४५:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २६

१४६:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५९

१४७:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८४

१४८:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ९१

१४९:- मंज़ूर एहतेशाम,दास्तान-ए-लापता, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११३

१५०:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११

१५१:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - २६

१५२:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ५५

१५३:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ६०

१५४:- मंज़ूर एहतेशाम,बशारत मंज़िल, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ७०

१५५:- मंज़ूर एहतेशाम,पहर ढलते, राज कमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ४५

१५६:https://www.google.com/amp/s/aajtak.intoday.in/lite/story/manzoor-ahtesham-birth-day-special-book-excerpts-from-madarsa-novel-1-1072910.html

१५७:- यशपाल, 'झूठा सच' : भाग -2 ' देश का भविष्य ', पृष्ठ संख्या - ३८७,३८८

१५८:- जैनेन्द्र कुमार, सुखदा, पृष्ठ संख्या - १५

१५९:- प्रेमचंद, रंगभूमि : दूसरा भाग, पृष्ठ संख्या - १४९

१६०:- बेचन शर्मा उग्र, चन्द हसीनों के खुतूत, पृष्ठ संख्या - ७८-७९

१६१:- बलवंत सिंह, काले कोस, पृष्ठ संख्या - २५९

१६२:- बलवंत सिंह, काले कोस, पृष्ठ संख्या - २६३-२६४

१६३:- कमलेश्वर, लौटे हुए मुसाफिर, पृष्ठ संख्या - ३३

१६४:- आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृष्ठ संख्या -२८-२९

१६५:- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ संख्या - १०७

१६६:- यशपाल, 'झूठा सच' : भाग -1 ' वतन और देश ', पृष्ठ संख्या - ७५

१६७:- यशपाल, 'झूठा सच' : भाग -1 ' वतन और देश ', पृष्ठ संख्या - ५१५

१६८:- रही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ संख्या - २७९

१६९:- कमलेश्वर, लौटे हुए मुसाफिर, पृष्ठ संख्या - ८२-८३

१७०:- आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृष्ठ संख्या -११६)

१७१ :- यशपाल, 'झूठा सच' : भाग -1 ' वतन और देश ', पृष्ठ संख्या - ७५

१७२ :- भीष्म साहनी, तामस, पृष्ठ संख्या - ८५

१७३ :- भीष्म साहनी, तामस, पृष्ठ संख्या - २१५

१७४ :- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ संख्या- ३३६

१७५ :- गुरुदत्त, स्वराज्यदान, पृष्ठ संख्या - २८७

१७६ :- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ संख्या- २९१

१७७ :- फणीश्वरनाथ 'रेणु', जुलूस, पृष्ठ संख्या - १७४

१७८ :- पं. लज्जाराम शर्मा मेहता, सुशिला विधवा पृष्ठ संख्या - ११६

१७९ :-   राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृष्ठ संख्या - १२

१८० :- राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ संख्या - २२६

१८१:- राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ संख्या - २५५

१८२:- राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ संख्या - ३४५

१८३:- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ संख्या- ८३

१८४:- डॉ. रसीला उमरेटिया, भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ संख्या - १८२

१८५:- फणीश्वरनाथ 'रेणु', जुलूस, पृष्ठ संख्या - ०१-०२

१८६:- बदी उज्जमां, छाको की वापसी, पृष्ठ संख्या : १०५

१८७:- राही मासूम रज़ा, ओस की बूंद, पृष्ठ संख्या - २१

१८८:- नासिरा शर्मा, जिंदा मुहावरे, पृष्ठ संख्या - १०

१८९:- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ संख्या - १२०

-:छायाचित्र:-

छायाचित्र:-१:- फेसबुक प्रोफाइल मंज़ूर एहतेशाम जी की।

छायाचित्र:-२:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesham&client=ms-android-

oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59jg:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKEwjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566

छायाचित्र:-३:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesham&client=ms-android-oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59jg:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKEwjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566

छायाचित्र:-४:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesham&client=ms-android-oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59jg:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKEwjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566

छायाचित्र:-५:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesham&client=ms-android-oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59jg:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKEwjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566

छायाचित्र:-६:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesh

am&client=ms-android-
oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59j
g:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKE
wjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-
CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566

छायाचित्र:-७:-
https://www.google.com/search?q=novels+of+manzoor+ahtesh
am&client=ms-android-
oppo&prmd=vni&sxsrf=ALeKk00deOLRRgVW_heFb9hlQetHHj59j
g:1620244372846&source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=2ahUKE
wjuravSqLPwAhUNbn0KHbJ-
CvsQ_AUoA3oECAIQAw&biw=360&bih=566